सम्पूर्ण जीवन दर्शन

सुखी जीवन का अज्ञात सूत्र (फार्मूला)

लेखक - प्रेमजीत सिरोही

प्रेमजीत सिरोही

प्रेमजीत सिरोही जी एक वक्ता,लेखक एवं दार्शनिक हैं। वे ULM(UNIVERSAL LIFE MANAGEMENT) संस्था के संस्थापक भी हैं। यह संस्था वैश्विक चुनौतियों का समाधान प्रदान करने के लिए एक थिंक टैंक है। प्रेमजीत सिरोही जी की पुस्तक **"सम्पूर्ण समाधान- एक नयी सामाजिक राजनैतिक अर्थव्यवस्था"** मानव जीवन की सभी समस्याओं के लिए एक नयी व्यवस्था की पेशकश करती है, जिसमें सभी मनुष्य समान रूप से सुखी हो सकेंगे। उन्होंने कई व्याख्यान दिए हैं और देश विदेश में विभिन्न मंचों पर भाग लेकर इस समाधान को जन जन तक पहुंचाने का अभियान शुरू कर दिया है। उनके व्याख्यानों में अर्थशास्त्र, राजनीतीशास्त्र, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र से लेकर मनोविज्ञान तक जैसे कई विषयों का समावेश होता है।

वह मनुष्य जीवन की चुनौतियों के हल के लिए एक व्यवस्था आधारित समाधान पर व्याख्यान देते हैं। उनका केंद्रीय विषय एक नया अर्थशास्त्र है जिसके द्वारा सभी मनुष्यों को उनका इच्छित जीवन मिल सकेगा और समाज जनित सुख सुविधाओं का न्यायपूर्ण उत्पादन और वितरण संभव हो सकेगा। उनके पास मानव चेतना के बारे में गहरी समझ है| वे एक ध्यान गाइड भी हैं। उन्होंने आत्मज्ञान में इच्छुक व्यक्तियों के लिए भी एक कार्यक्रम विकसित किया है, ताकि वे स्वयं पुष्टि कर सकें कि हम कौन हैं, हम कैसे कार्य करते हैं और हम यहां क्यों हैं। उनके निष्कर्ष बहुत ही अनोखे, मौलिक और अकादमिक परंपरा में अनसुने है।

तालिका

पुस्तक का उद्देश्य	6
आत्मज्ञान और जीवन–दर्शन	13
माण्डुक्य उपनिषद	26
विस्तारित व्याख्या	29
पहला मंत्र	29
दूसरा मंत्र	32
तीसरा मंत्र	33
चौथा मंत्र	35
पांचवा मंत्र	36
छठवां मंत्र	38
सातवां मंत्र	41
आठवां मंत्र	43
अवस्थाओं के ज्ञान का परिणाम	49
नवां मंत्र	53
दसवां मंत्र	62
ग्यारहवां मंत्र	69
बारहवां मंत्र	74
अवस्थाओं में संबंध	77
अवस्थाओं में प्रवेश	83

जाग्रत अवस्था में प्रवेश 84

स्वप्न अवस्था में प्रवेश 90

सुषुप्ति अवस्था में प्रवेश 97

अहम् 98

अहम्कार 100

ईच्छा या कामना या वासना या चाहत 100

सुख, दुख क्या हैं? 102

स्मृति या याददाश्त 103

संस्कार या आदतें या अभ्यास 103

बुद्धिमानी, ज्ञान या समझ क्या है? 103

भावनाएं क्या होती हैं? 105

स्वतंत्रता क्या है? 107

कर्म का सिद्धांत? 107

पहले कर्म होता है या जन्म? 109

क्या पुनर्जन्म होता है? 109

आत्मा क्या है? 112

धारणा, ध्यान और समाधि क्या हैं? 114

तुरियावस्था में प्रवेश 116

सत्य 117

प्रेम 118

न्याय 119

पुण्य 120

अच्छाई और बुराई क्या होती है? 121

अच्छाई और बुराई का मूल कारण 121

सारांश 125

पुस्तक का उद्देश्य

जीवन दर्शन का अर्थ होता है कि एक ऐसा दर्शन जो हम सबके जीवन को पूर्णरूप से प्रकाशित करता हो। प्रकाशित करने का अर्थ है कि वह हमारे जीवन के बारे में सबकुछ विस्तार से बताता हो जैसेकि ये जीवन क्यों है अर्थात् इसका क्या उद्देश्य है और कैसे उसे पूरा करें। क्यों करें और क्यों ना करें, क्या करें और क्या ना करें, कब करे और कब ना करें, कैसे करें और कैसे ना करें। हम कौन हैं, कहां से आये हैं, क्यों आये हैं, यहां क्या करें, क्या ना करें आदि प्रत्येक प्रकार के प्रश्नों का हल देता हो। जोकि प्रत्येक समस्या के मूल तक जाने में सहायता देता हो एवं उसका उचित समाधान भी करने में सक्षम हो उसी को सही मायने में जीवन दर्शन कहना चाहिए। वह हमारे सबके जीवन को सभी प्रकार से व्यवस्थित करने का तरीका भी बताता हो। या उसमें हमारी सहायता करता हो।

मैंने इन्हीं सारे प्रश्नों के उत्तर खोजने का एक सफल प्रयास किया है। अब ये प्रयास कितना सफल हुआ है ये तो आप सब लोग ही बतायेंगे। हां मुझे तो पूरा संतोष हुआ इसे जानकर, लिखकर और अब इसे स्थापित करने का प्रयास भी मैं कर रहा हूं। जानना और लिखना तो कोई एक आदमी भी कर सकता है। जोकि मैंने कर दिया है। लेकिन इसे समाज में स्थापित करना एक के लिए सम्भव नहीं है। तो यदि आपको इसे पढ़कर लगे कि हां ये एक सही प्रयास है तो कृप्या इसे स्थापित करने में आप सभी अपनी रूचि और क्षमता के हिसाब से हिस्सा लें। ये आप सभी के सहयोग से ही किया जा सकता है। दूसरा कोई उपाय नहीं है इसे करने का। और यदि आपको लगे कि नहीं ये एक बेकार का प्रयास था या आप नहीं चाहते कि ये हो तो फिर इसे स्थापित करने का कोई औचित्य नहीं होगा। तो भी कृप्या आप मुझे जरूर बतायें ताकि मैं जो अपने स्तर से इसे जितना भी करने का प्रयास कर रहा हूं उसे बन्द कर सकूं। जो भी हो आप अपने निर्णय से मुझे अवश्य ही अवगत करायें। इसे करने या ना करने का कारण भी अवश्य बतायें। आपका बहुत धन्यवाद होगा। पर आप जोभी निर्णय लें उसका आधार भी कृप्या लिखकर विस्तार से भेजें।

मैंने अपनी लगभग 20 वर्षों की खोज में ये जाना कि ये जीवन सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त करने के लिए बना है। यहां हम सभी उन सभी सुखों को पाना चाहते हैं जिनकी कि हमें पाने की इच्छा होती है। और मैंने अपनी खोज में ये भी जाना कि ये हम सब सामुहिक रूप से ही प्राप्त कर सकते हैं, व्यक्तिगत रूप से ये सम्भव नहीं है।

व्यक्तिगतरूप से हम जैसे तैसे केवल जीवित ही रह सकते हैं। उदाहरण के लिए जैसे तैसे वर्षा के पानी की मदद से हम खेती कर सकते हैं। जिसमें कुछ अनाज आदि ही या कुछ फल आदि ही वो भी जहां हम रहेंगे वहां के मौसम और मिटटी के हिसाब से पैदा कर सकते हैं और उनका उपभोग कर सकते हैं। यदि बीमार पड़े तो खुद ही डॉक्टर बनना पड़ेगा, कपड़ा पहनना है तो खुद ही बुनकर बनाना पड़ेगा। टैक्नोलाजी भी खुद ही खोजनी होगी और उसको प्रयोग के लायक भी हमें खुद ही करना होगा और फिर प्रयोग भी हम ही करेंगे। इससे साफ है कि हम अकेले सभी प्रकार के कार्य खुद नहीं कर सकते। तो अपने दम पर सारे सुख प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि सभी प्रकार के सुखों को पैदा करने के लिए पहले आदमी को उस विषय में दक्ष होना जरूरी है। जिसके लिए विद्यालय होने जरूरी हैं। विद्यालय के लिए एक पूरी व्यवस्था चाहिए जोकि शिक्षक पैदा कर सकें। जो भी खोजें हुई उनका संकलन फिर उनका अध्ययन फिर अध्यापन और तब जाकर हम किसी आदमी को दक्ष कर पायेंगे। तब जाकर वो आदमी उस वस्तु का सही से उत्पादन कर पायेगा। तब वो हम तक पहुंचेगी। अर्थात् एक पूरी व्यवस्था चाहिए नहीं तो ये सम्भव ही नहीं है। अपने बल पर केवल सामान्य खाना आदि के अलावा और कुछ सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती।

मैं इस पुस्तक में आगे स्पष्ट करूंगा कि इस जीवन का उद्देश्य अपने ईच्छित सुखों की निरंतर प्राप्ति करना ही है। तो सही **जीवन दर्शन** उसी को कहेंगे जिसमें हमारे जीवन को सभी प्रकार के सुखों से भर सकने की पूरी क्षमता हो। और यदि कभी हमारे जीवन में कोई समस्या आ भी जाये तो उसका समय रहते समाधान करने की योग्यता हमारे अंदर पैदा करता हो। तो इस पुस्तक को लिखने का मेरा यही उद्देश्य है कि यह पुस्तक एक ऐसा जीवन दर्शन दे सके जिससे कि सभी का जीवन सम्पूर्णरूप से सुखी हो सके एवं निरंतर सुखी बना रह सके।

मैं जब छोटी आयु का था तो तभी से मेरे अंदर जीवन से सम्बंधित मूल प्रश्नों की एक लम्बी श्रंखला थी जोकि समय बढ़ने पर और लम्बी होती जा रही थी। जिसमें पहला प्रश्न ये था कि ये जीवन क्यों है? अर्थात इस जीवन का उद्देश्य क्या है? ये इतना विशाल संसार जिसका कोई ओर छोर नहीं दिखाई पड़ता, जिसकी कोई सीमा दिखाई नहीं पड़ती, इसका निर्माण क्यों किया गया है? अर्थात इस विशाल संसार को बनाने का क्या प्रयोजन है, क्या उद्देश्य है? क्या हम सब यूं ही कभी दुखी और कभी सुखी होते रहने के लिए पैदा हुए हैं। या कि हम सभी कभी अपनी ईच्छापूर्वक भी जी सकेंगे? मेरे प्रश्नों के उत्तर मुझे किसी भी उपलब्ध दर्शनों से संतुष्ट करने

वाले नहीं मिल रहे थे। मैं अनुभव कर रहा था कि इन सभी दर्शनों में इस प्रश्न के उत्तर पर गहराई से कार्य नहीं किया गया है। जबकि यदि हम अपने जीवन में कोई भी कार्य करते हैं तो सबसे पहले उस कार्य का उद्देश्य ही तय करते हैं। उसके बाद उस कार्य को इस तरह से आगे बढ़ाते हैं कि हम उस उद्देश्य को पा सकें। कार्य को करने के समय में भी सदैव इस बात का ध्यान रखा जाता है कि हम उद्देश्य के और पास पहुंच रहे हैं कि नहीं। प्रत्येक मनुष्य कम या अधिक ऐसा ही करता है। अर्थात सबसे पहले उद्देश्य को ही निश्चित किया जाता है। यानिकि हमारे सभी कार्यों का कोई ना कोई उद्देश्य होता ही है। इसी प्रकार दर्शन का भी तो कोई सटीक उद्देश्य होना चाहिए। आखिर ये हमारे जीवन का आधार बनता है। इसे हम ऐसे ही नहीं छोड़ सकते। और बिना जीवन दर्शन के तो मनुष्यों का जीवन पशुओं के जीवन से थोड़ा सा भी भिन्न कैसे होगा। तो यदि कोई कहता है कि जीवन दर्शन की आवश्यकता ही क्या है जोकि अभी कुछ लोगों ने कहना शुरू कर दिया है। तो ये तो सही नहीं होगा। हांलाकि लोग जीवन दर्शन की आवश्यकता को इसलिए नकारने लगे हैं क्योंकि वर्तमान के जीवन दर्शन तो सही प्रकार से कोई समाधान दे ही नहीं रहे। तो लोगों को इससे ऐसा लगता है कि कहीं सारी समस्याओं की जड़ ये दर्शन ही तो नहीं। तो इससे तो दर्शन को नकारना बनता ही है। पर मित्रों हमे ये भी तो सोचना चाहिए कि कहीं ऐसा तो नहीं कि अभी सही से हमारे पास जीवन दर्शन हो ही ना। हम सभी के पूर्वजों ने कोशिश तो की कई बार दर्शन बनाने की परंतु वे अभी तक सही से बना नहीं पाये। मुझे ऐसा ही लगता है कि पूर्वजों ने कई बार कोशिश की है दर्शन बनाने कि पर वो एक ऐसा सम्पूर्ण जीवन दर्शन अभी तक नहीं बना पाये जिससे हमारे सभी की सारी जीवन समस्याएं समाधान हो जातीं। बहुत शोध एवं अनुसंधान के बाद मैंने ऐसी एक कोशिश की है जिससे एक ऐसा जीवन दर्शन बन सके जिससे कि हमारे सभी के जीवन की सारी समस्याएं तिरोहित हो जायें और जीवन में केवल सुख ही रहे, दुख नहीं। तो मित्रों जीवन दर्शन की आवश्यकता तो है, और इसी आवश्यकता के चलते ही हमारे पूर्वजों ने अपनी समझ और क्षमता के हिसाब से अपने अपने समय में जीवन दर्शन बनाये या लिखे भी, भले ही वो अभी तक पर्याप्त सिद्ध नहीं हुए हैं। लेकिन ये तो जब तक होता ही रहेगा जबतक कि एक पूर्ण सटीक जीवन दर्शन नहीं बन जाता। किसी भी विषय पर तबतक खोज होती ही रहेगी जबतक कि हम उसकी पूर्णता पर नहीं पहुच जाते। तो इस बात से मैं सहमत हूं कि हमारे पास जीवन दर्शन तो होना ही चाहिए और पहले से बहतर होना चाहिए। परंतु दर्शन एक ही होना चाहिए। नहीं तो विभिन्न प्रकार के दर्शन एक समस्या पैदा करते हैं। वो ये कि लोग अलग अलग दिशा में जाना शुरू कर देते हैं जिसके कारण लोगों के बीच द्वंद फैलने लगता है जोकि छोटी से लेकर बड़ी लड़ाई का कारण

बनता है। जोकि आप सभी देख ही रहे हैं। विभिन्न प्रकार के आतंकवाद हो रहे हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि दर्शन होने चाहिए जीवन की समस्याओं का समाधान करने के लिए परंतु हो ये रहा है कि दर्शनों के नाम पर ही युद्ध हो रहे हैं। दर्शन युद्धों को समाप्त करने के लिए होने चाहिए परंतु दर्शन ही युद्ध का कारण बन रहे हैं। तो मित्रों हम सभी को देखना चाहिए कि जब कोई नया जीवन दर्शन आये तो उसे पहले दर्शन से संबंधित लोगों के समक्ष रखना चाहिए और उसकी समीक्षा होनी चाहिए कि क्या ये जीवन दर्शन मौजूदा जीवन दर्शन से अधिक अच्छा है? और यदि ये समझ में आये कि अच्छा है तो पहले वाले जीवन दर्शन की जगह इस नये जीवन दर्शन को लागू कर देना चाहिए। इससे क्या होगा कि हमेशा एक ही जीवन दर्शन बना रहेगा और आपस में विभिन्न मत मतांतर नहीं होंगे। तो इसकी वजह से जो युद्ध होते है या वैमनस्यता फैलती है वो नहीं फैलेगी। ज्ञात इतिहास में ऐसा नहीं जान पड़ता कि नया दर्शन आने के बाद उसे उस समय के दार्शनिकों के समक्ष रखा गया हो। और उसके बाद ये तय किया गया हो कि ये मौजूदा जीवन दर्शन से अधिक उपयुक्त है या नहीं। ये तो साफ ही है कि कोई भी नया जीवन दर्शन तभी आयेगा जबकि मौजूदा जीवन दर्शन हमें सम्पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं कर पा रहा होगा। निश्चित ही ये खोज तबतक होती ही रहेगी जकतक कि हम ऐसे जीवन दर्शन को नहीं खोज लेते जोकि हम सभी को सभी प्रकार से संतुष्ट कर सके।

तो इससे क्या हुआ कि पहला वाला जीवन दर्शन भी लागू रहा और धीरे धीरे नया जीवन दर्शन को मानने वाले भी लोग होने लगे और चुंकि दोनों दर्शनों के मतों में अन्तर था तो लोगों में भी मतान्तर होने लगा और एक का रहन सहन दूसरे के रहन सहन में विभिन्न प्रकार के दुख पैदा करने लगा। जिससे कि एक और युद्ध का कारण बनने लगा। और इसी प्रकार आप आज देख सकते हैं कि इस समय एक दो नहीं अनेकों जीवन दर्शन इस पृथ्वी पर क्रियाशील हैं जिनके कारण कई प्रकार के युद्धों की स्थिति पैदा हो गयी है और कुछ तो युद्ध हो भी चुके हैं। और हल्की फुल्की लड़ाइयां तो होती ही रहती हैं हमेशा, उनकी तो गिनती ही क्या करनी। सभी प्रकार के आतंकवाद इस बात का उदाहरण हैं।

तो जिस तरह से जब विज्ञान में वैज्ञानिक कोई नई खोज करते हैं तो उसे बाकि वैज्ञानिकों के समक्ष रखा जाता है और उसे देखा जाता है कि कैसे ये खोज अधिक सटीक है पुरानी की गई खोज से। और यदि उसे अधिक सटीक पाया जाता है तो उस खोज से पुरानी खोज को बदल दिया जाता है। इस बात को मैं एक उदाहरण से और स्पष्ट करना चाहता हूं। जैसे यदि आपको याद होगा आज से कोई 40 वर्ष

पहले बिजली के पंखे बहुत ही अधिक बिजली खाने वाले और बहुत ही भारी होते थे। एक आदमी से उस पंखे को उठाना मुश्किल होता था। पर धीरे धीरे उसमें नयी खोजें हुई और धीरे धीरे उनका वजन कम होता चला गया और कम बिजली भी खाने लगा। तो पंखा बनाने वाली कम्पनी ने देखा कि अब तो उतने मेटिरियल में कई पंखे बन सकते हैं और कीमत भी कम पड़ेगी, और बिजली भी कम खर्च होगी। इस तरह से उन्होंने पुरानी टैक्नोलॉजी को नई टैक्नोलॉजी से बदल दिया। और लोगों को दुकानदारों ने समझाया कि अब नया पंखा आ गया है जिसकी कि क्षमता अधिक है, बिजली कम खाता है और लगाने में भी आसान है आदि। लोगों को भी समझ में आया और आज आप देख सकते हैं कि हम सभी के घरों में, स्कूल में और हर जगह नये पंखे हैं पुराने नहीं रहे। यही बात आप पुराने मोबाइल में और नये मोबाइल में भी समझ सकते हैं। और प्रत्येक बात में समझ सकते हैं। पर हमने ये बात जीवन दर्शन में लागू नहीं की कि भाई ये नया जीवन दर्शन आया है तो इसे भी अपनाये और पूराने को अलविदा कहें यदि ये अधिक सही है तो। अगर हमने ये किया होता तो निश्चित ही आज हम सभी के पास अधिक अच्छा जीवन दर्शन होता और एक समय में एक ही होता। अनेक जीवन दर्शन एक ही समय में होना ये बताता है कि उनमें कभी सही तरीके से तुलना नहीं की गई।

तो साथियों हमारे पूर्वजों से ये चूक तो हो रही थी और हमारे द्वारा अभी भी हो रही है। अन्यथा यदि एक भी सही दर्शन उपस्थित होता तो वो हमें समाधान देता, समस्याएं नहीं। और अनेकों जीवन दर्शन होने से तो समस्या और भी बढ़ गई कि ये ही युद्ध का कारण हो गये। जीवन दर्शन बनाये तो गये थे ये सोचकर कि ये लोगों के जीवन को और अधिक सुखी बनायेंगे। पर वो तो हुआ नहीं, उल्टा और एक समस्या बन गई कि अनेकों दर्शनों के कारण मनुष्य कई वर्गों में बंट गये और एक दूसरे के विरोधी हो गये। अब चूकिं हमारे पास अनेक जीवन दर्शन पहले से उपलब्ध हैं और ये देखते हुए कि हमारी सभी समस्याएं समाप्त नहीं हुई हैं, मैंने ये एक और जीवन दर्शन लिख दिया है। और मुझे ऐसा लगता है कि ये जीवन दर्शन पहले सभी जीवन दर्शनों की जगह ले लेगा। और लोगों को बहुत अधिक सुखी कर देगा। और अब मैं लोगों से ये अपील करना चाहता हूं और उससे भी पहले सभी दार्शनिकों से ये अपील करना चाहता हूं कि वे सभी एक मंच बनाकर सभी जीवन दर्शनों पर एक बार इस प्रयोजन से चर्चा करें कि कौन सा जीवन दर्शन सबसे अधिक उपयुक्त है, कौनसा दर्शन हमारी सर्वाधिक समस्याओं को समाधित कर सकता है एवं कौनसा जीवन दर्शन हमारे जीवन को सर्वाधिक सुखी कर सकता है। और जिस भी जीवन दर्शन को वो सबसे अधिक उपयुक्त पायें उसे फिर बाकी जनता को व्याख्यायित करें,

समझायें सभी दार्शनिक मिलकर। और जब उसपर आम सहमति बन जाये तो आगे का पूरा जीवन उस जीवन दर्शन पर स्थापित करें। हमारा सबकुछ उस जीवन दर्शन के आधार पर ही होना चाहिए चाहे वो राजनीति हो, चाहे आध्यात्म हो और चाहे भौतिकता हो, चाहे शिक्षा हो, माने कुछ भी हो। और इस बात की हमेशा समीक्षा होती रहनी चाहिए कि क्या मौजूदा जीवन दर्शन हमारे जीवन को सभी प्रकार से सुखी कर रहा है कि नहीं। यदि कर रहा है तो समझना चाहिए कि अब ये परम जीवन दर्शन हमें मिल चुका। अब इस विषय पर और शोधानुसंधान की आवश्यकता नहीं है। पर यदि अभी भी कुछ रह गया है, हमारा जीवन सम्पूर्ण रूप से सुखी नहीं हुआ है तो दार्शनिकों को अपना प्रयास जारी रखना चाहिए, शोधानुसंधान करते रहना चाहिए परम जीवन दर्शन लाने तक। और इसी प्रकार विज्ञान भी प्रत्येक क्षेत्र में लगा रहना चाहिए जबतक कि वह उस क्षेत्र में अन्तिम स्थिति तक नहीं पहुंच जाता।

अब प्रश्न ये है कि किसे अपना जीवन दर्शन माना जाये। तो मैंने अपने शोधानुसंधान के समय में उन सभी लोगों से जिनसे मुझको मिलने का अवसर मिला जोकि अलग अलग दर्शनों को जानने वाले थे उनसे सभी प्रकार के प्रश्न किये परंतु संतुष्टिपूर्ण उत्तर नहीं मिल सके। कुछ प्रश्नों के उत्तर एक दो लोगों से मिले पर उससे कोई सही दर्शन उभर कर नहीं आ रहा था। उसके बाद मैंने खुद बचे हुए प्रश्नों के उत्तर खोजे। और तब जाकर ये सटीक जीवनदर्शन उभर कर आया। फिर मैंने एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन का निर्माण किया जिसका कि आप इस पुस्तक में अध्ययन करेंगे।

मैंने प्रकृति का, लोगों का, जीवजंतुओं का, वनस्पतियों का और ग्रहों आदि का एवं स्वयं का बहुत ही गहराई से बाहय एवं आंतरिक रूप से अध्ययन किया। और मेरा ये अध्ययन इस बात को मध्यनजर रखकर हुआ है कि जिससे मैं जान सकूं कि इस मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य क्या है। आप ये ना समझें कि मैंने आर्युवेद के लिए वनस्पतियों का अध्ययन किया है या कि ग्रहों का अध्ययन मैंने ये जानने के लिए किया है कि कौन से ग्रह पर क्या है और वह किसका बना हुआ है, ये सब तो विज्ञान के विषय हैं। यहां जो मैंने इन सबका अध्ययन किया है वो केवल जीवन के उद्देश्य को जानने की दृष्टि से किया है। इसमें जोकि अभी तक जितने शोधानुसंधान विज्ञान में हो चुके हैं उनका मैंने जान समझ कर उपयोग किया है। क्योंकि मैं विज्ञान का ही छात्र रहा हूं इसलिए ये मेरे लिए सरल ही था। और अध्ययन करने के अलावा मैंने बहुत सारी साधनाएं भी की तथा इन सभी को जब मैंने एक साथ अपने सामने रखा तो मुझे धीरे धीरे ये सब समझ आने लगा। और उस समझ से मुझे और भी अधिक समझने में मदद हुई। और इसी प्रकार धीरे धीरे मैं

समझता चला गया। इस प्रकार के क्रम से मैं बहुत लम्बे समय के बाद ऐसी स्थिति में आया हूं जिसेकि मैं कह सकता हूं कि हां अब मैं संतुष्ट हूं। अब इतना पर्याप्त ज्ञान मुझे हो गया है जिससे कि मैं ऐसी व्यवस्था का निर्माण कर सकता हूं जिससे कि हम सभी के लक्ष्य की पूर्ति हो सके। उस ज्ञान का प्रयोग करते हुए एक पूरा जीवन दर्शन मैं लिख रहा हूं। जिसके द्वारा उन सभी प्रश्नों के उत्तर मिल सकें जोकि जीवन की व्यवस्था से संबंधित हैं। और अब ये दर्शन मेरे जीवन का आधार भी बना हुआ है, इस दर्शन के आधार से मैं अपनी सभी सर्वाधिक समास्याओं का समाधान तो कर ही लेता हूं और ऐसा भी पाता हूं कि यदि इस दर्शन के आधार से अपने जीवन की पूरी व्यवस्था को बनाया जाये तो भविष्य में किसी भी तरह की समस्याएं पैदा ही नहीं होंगी। जैसी कि अभी हम सभी के जीवन में बनी हुई हैं। और तब हम सभी का जीवन सही दिशा में आगे जायेगा नाकि समस्याओं से लड़ने में समाप्त होगा। तो ये इस पुस्तक को लिखने का मेरा उद्देश्य है।

आपमें से ही एक **प्रेमजीत सिरोही**

वेदांत में सभी उपनिषदों में माण्डुक्य उपनिषद सबसे छोटा उपनिषद है। सबसे तेज उपाय है, आत्मज्ञान को प्राप्त करने का। ऐसा सभी आचार्यों का मत है और मेरा भी। लेकिन मुझे कुछ और भी लगता है। ये उपनिषद हमें आत्मज्ञान के अलावा ये भी बताता है कि जो मनुष्य जिस भी अवस्था को जान जायेगा, तो वो मनुष्य उस ज्ञान से कुछ परिणाम भी प्राप्त करेगा अपने जीवन में। जिसके द्वारा वह मनुष्य इस जागतिक संसार में ऐसी व्यवस्था का प्रतिपादन करेगा जिसे सभी स्वीकार करके उसके उस परिणाम को प्राप्त कर लेंगे। ऐसा नहीं है कि इस उपनिषद को जानकर केवल आत्मज्ञानी को ही लाभ मिलेगा। बल्कि दूसरे लोग जिनको आत्मज्ञान में रूचि नहीं है, वो भी इसका वांछित अधिकतम लाभ ले सकेंगे। उदाहरण के लिए जैसे कोई वैज्ञानिक किसी तकनीकि को खोजता है। और अपने लिए कुछ उपकरण बना लेता है, जिससे उसका जीवन सुखी होता है। दूसरे मनुष्य भी उस तकनीकि का लाभ ले सकते हैं वो भी बिना उस तकनीकि का ज्ञान लिए। जैसे कि मोबाइल, टेलिविजन, आटोमोबाईलस् आदि। उसी प्रकार से आत्मज्ञान से जो भी ऐसा ज्ञान मिलता है जिससे कि उसका कोई प्रयोगात्मक रूप जीवन में लाया जा सके तो उसका लाभ सभी लोग ले सकते हैं। ये उपनिषद ये भी बताता है कि स्वप्नावस्था के जानने से उसके कुल में सभी ब्रहमज्ञानी ही पैदा होंगे। और कुल का अर्थ यहां वसुधैव कुटुम्बकम से आप ले सकते हैं। अर्थात जहां तक भी उसके ज्ञान की स्वीकारोक्ति होगी वो उसका कुल होगा। इसका अर्थ ये हुआ कि यदि इस धरा पर कोई एक भी आत्मज्ञानी होगा और यदि वो उस ज्ञान को लिखने में सफल हो जाता है। उस ज्ञान को उपयोगी बनाकर सबको वो सुख दिया जा सकता है जोकि उस ज्ञान से निकलता है।

आत्मज्ञान का अर्थ होता है कि ये जो हम अपना होना पना अनुभव करते हैं, जैसे **मैं हूं**, ये अनुभव। जब जागरित अवस्था में, मैं ये अनुभव करता हूं कि मैं हूं। मैं हूं में मेरा व्यक्तित्व भी संयुक्त रहता है। एक नवजात शिशु को छोड़कर या किसी आत्मज्ञानी को छोड़कर बाकि किसी के लिए जागतिक अवस्था में शुद्ध होनेपने की अवस्था में रहना सम्भव नहीं हो पाता है। क्योंकि शिशु को तो अभी कोई व्यक्तित्व उत्पन्न ही नहीं हुआ है और आत्मज्ञानी में ये क्षमता हो जाती है कि वो शुद्ध होनेपने को और व्यक्तित्व को अलग अलग रख सकता है। शिशु तो अभी व्यक्तित्व बनने की यात्रा पर

अग्रसर है ही। धीरे धीरे वो कोई एक सम्भावित व्यक्तित्व को धारण करता जायेगा। शिक्षा व्यवस्था इसी को निर्देशित करने के लिए एक सशक्त माध्यम है।

व्यक्तित्व का अर्थ है जैसे मैं लेखक हूं, मैं बढ़ई हूं, मैं तकनीकि विशेषज्ञ हूं, मैं वैज्ञानिक हूं, मैं कृषक हूं, मैं देश का प्रधानमंत्री हूं, मैं नेता हूं, मैं धोबी हूं आदि। संबंधों में देखें तो कहीं मैं पिता हूं, कहीं मैं पूत्र हूं, कहीं में माता हूं आदि। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व हो सकते हैं। जागतिक अवस्था में, शुद्ध मैं के साथ ये सारी उपाधियां संयुक्त रहती हैं जिसके आधार से हम अपने आपको इस संसार में व्यक्त करते हैं। बिना इन व्यक्तित्व के या बिना इन उपाधियों के हम अपने आप को अभिव्यक्त नहीं कर सकते, व्यवहरित नहीं कर सकते। वो सम्भव नहीं होगा। केवल होने मात्र से कुछ भी व्यवहरित नहीं होता। केवल आप हो बस उतना ही पता चलता है। कोई भी व्यवहार के लिए कोई ना कोई व्यक्तित्व चाहिए होता है जिसके अनुसार हम व्यवहार कर पाते हैं। जिसके अनुसार हम ईच्छाएं कर पाते हैं। जिसके अनुसार हम कर्म कर पाते हैं या जिसके अनुसार हम कोई ज्ञान कर पाते हैं। और इसी व्यक्तित्व के आधार से ही हम सभी एक दूसरे से व्यवहार कर पाते हैं। कोई लेन देन कर पाते हैं।

इस जागतिक अवस्था में व्यक्तित्व के कारण हम अपने शुद्ध **मैं** को स्पष्टता से अनुभव नहीं कर पाते हैं। शुद्ध **मैं** का हल्का सा अनुभव ही हो पाता है, वो भी यदि हम अपने शुद्ध **मैं** को अनुभव करने का प्रयास करते हैं तो। नहीं तो सामान्यतया केवल अपने व्यक्तित्व का और दूसरे के व्यक्तित्व का ही अनुभव होता रहता है क्योंकि उसे तो हम सदैव ही व्यवहरित करते रहते हैं। हमें अपनी उपाधियां आवश्यकतानुसार सदैव स्मरण रहती हैं। हम उस शुद्ध **मैं** को स्मरण नहीं रखते क्योंकि वो अलग से अभिव्यक्त नहीं होता। और उसकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। क्योंकि अभिव्यक्ति तो केवल व्यक्तित्व की ही करनी होती है। इसीलिए तो उसे धारण किया जाता है। जीवन के सभी प्रकार के सुख इन उपाधियों के माध्यम से ही प्राप्त हो सकते हैं और होते हैं। जैसे नवजात शिशु कुछ भी अभिव्यक्त नहीं कर सकता क्योंकि अभी उसके पास कोई उपाधि ही नहीं है अभिव्यक्त करने को। उसे केवल भूख प्यास आदि प्राकृतिक अभिव्यक्तियां ही अभिव्यक्त हो पाती हैं जोकि प्राकृतिक अभिव्यक्ति है नाकि कोई व्यक्तित्व की अभिव्यक्तियां।

यदि कभी किसी को अपने शुद्ध **मैं** को अनुभव करने या जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है तो वो स्वयं की ओर इस जानने के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है कि मैं वास्तव में कौन हूं। क्योंकि इन उपाधियों के पहले भी मैं था ना? वो अपने

आप से ही प्रश्न करता रहता है। और साथ में अपना अवलोकन, अध्ययन करता रहता है। इसके लिए कुछ विधियां भी होती हैं जिनके प्रयोग से अपने आपको जानना सरल हो जाता है। मैं वो विधियां इस पुस्तक में लिखूंगा। परंतु उसके पहले हमें स्वयं को बौद्धिक स्तर पर समझना होगा। उसके बाद उन विधियों का प्रयोग कर हम अपने शुद्ध **मैं** का अनुभव भी कर सकते हैं। वो सरल ही है। इसी शुद्ध **मैं** के अनुभव को ही आत्मज्ञान कहा जाता है। इस आत्मज्ञान के बाद ये अनुभव में आ जाता है कि **मैं** ये नामरूप उपाधियों से पहले वो हूं जोकि इन नामरूप उपाधियों को किसी उददेश्य के लिए धारण करता है। और इसीप्रकार दूसरे जीव भी वहीं हैं जोकि **मैं** हूं। किसी भी जीव के शुद्ध **मैं** में कोई अंतर नहीं होता। सबका **मैं** एक जैसा ही होता है। बस इस स्थूल शरीर के अनुसार उस शुद्ध **मैं** की जागृति की मात्रा का अंतर होता है। उदाहरण के लिए जैसे मनुष्य के शुद्ध **मैं** का जागृति स्तर पशुओं के शुद्ध **मैं** के जागृति स्तर से अधिक होता है। विभिन्न मनुष्यों के **मैं** का जागृति स्तर भी अलग अलग होता है। परंतु **मैं** का अनुभव सबको एक जैसा ही होता है।

ये विभिन्न जागृति स्तर होने के भी प्रयोजन हैं। इसी विभिन्नता के कारण ही अनेकता का जन्म होता है। इसी विभिन्नता के कारण ही विभिन्न प्रकार की रूचियां उत्पन्न होती हैं। विभिन्न प्रकार के विषय उत्पन्न हो पाते हैं। विभिन्न प्रकार के कर्म और ज्ञान उत्पन्न हो पाते हैं। और कुल मिलाकर अनेकों सुख के साधन उत्पन्न हो पाते हैं। नहीं तो ये एक कभी अनेक होता ही नहीं। दूसरे शब्दों में ये कह सकते हैं कि ये विभिन्नता ही परिवर्तनशीलता है, अनेकता है।

खोजने पर ये भी पता चल जाता है कि ये एक से अनेक होने की प्रक्रिया का उद्देश्य क्या है। ये प्रक्रिया किस प्रयोजन के अंर्तगत हो रही है। इसी से ही इस संसार के होने का उद्देश्य पता चल जाता है। और जैसे प्रयोजन ज्ञात हो जाता है वैसे ही हमें इस संसार की दिशा का ज्ञान हो जाता है। और उसी आधार से, उसी दिशा के अनुसार हम सभी अपने जीवन की दिशा निश्चित कर सकते हैं। ये प्रयोजन या ये उद्देश्य ही कसौटी बन जायेगा हमारे सारे निर्णयों का, हमारी दिशा का, सही गलत का निश्चय करने में भी यहीं कसौटी हमें सहायता करेगी।

प्रायः लोग कहते रहते हैं कि आत्मज्ञान होने के बाद हमें कुछ और जानना या करना शेष नहीं रहता। परंतु मैंने पाया कि सुखी जीवन तो किसी ज्ञान के बाद ही प्रारम्भ होता है। ज्ञान के पहले तो जीवन में दुख की सम्भावना अधिक रहती है जबकि ज्ञान के बाद दुख की कोई सम्भावना नहीं रहती, केवल सुख ही परिणाम होता है। इसप्रकार से ज्ञान के बाद ही वो जीवन प्रारम्भ होता है जोकि हम चाहते हैं।

उदाहरण के लिए जबतक अग्नि का ज्ञान नहीं हुआ था तो जीवन कितना अंधकारमय और भयंकर था। भोजन भी बिना पका हुआ खाया जाता था। ठंडे मौसम में कितना नारकीय जीवन होता होगा बिना अग्नि के, कल्पना की जा सकती है। और अग्नि के ज्ञान के बाद जैसे जीवन में एक आमूल चूल परिवर्तन हुआ मनुष्य के जीवन में। पका हुआ भोजन लेना प्रारम्भ किया। रात्रि में प्रकाश करने लगा। खतरनाक जंगली जीवों से रक्षा भी कर पाया अपनी इस अग्नि के कारण। और अब तो अपना जीवन बिना अग्नि के कल्पना करने से भी भय लगता है। अग्नि के कारण इतनी सारी सुखसुविधाएं हम भोग रहे हैं इस समय। इन सारी सुखसुविधाओं से पहले के लोग वंचित थे। कितनी कठिनाई से वो अपना जीवन यापन करते होंगे! इस बात की हम लोग तो कल्पना ही कर सकते हैं। या वो अनुभव कर सकता है जिसको बिना अग्नि के कहीं कुछ दिन जीवन जीना पड़े।

और भी समझ सकते हैं। हमें दोनों प्रकार के जीवन का अनुभव रहता है। वो जीवन जब हम किसी बारे में अज्ञानी थे, और उस अज्ञान के कारण हमने बहुत दुख उठाये। और फिर उस जीवन का भी हमें अनुभव है जबकि हमने उसका ज्ञान कर लिया और उससे सुख प्राप्त कीये। जैसे आज बहुत सारे स्थानों पर बिजली पहुंच गयी है। वहां के लोगों को दोनों प्रकार के जीवन का अनुभव होगा। उनसे हम जान सकते हैं कि बिजली आने के बाद उनका कितना जीवन सुखमय हो गया है पहले की तुलना में। ऐसे ही हम भी अपने जीवन में तुलना करके देख सकते हैं। हम भी पायेंगे कि कई अर्थों में पहले की तुलना में जीवन सुखी हुआ है। हां ये भी है कि कुछ में स्थिति खराब भी हुई है। जिसे हम व्यवस्था के ज्ञान की कमी कह सकते हैं। जब सही व्यवस्था का ज्ञान भी हो जायेगा तो ये बची हुई समस्याएं भी उत्पन्न होना बंद हो जायेंगी। हमारा जीवन अधिकतर या पूर्णतया सुखी हो जायेगा। जोकि हम सब चाहते ही हैं। उसके लिए तो प्रत्येक मनुष्य परिश्रम करता रहता है।

इसलिए कह सकते हैं कि ज्ञान के बाद तो सुखी जीवन का प्रारम्भ है नाकि जीवन का अंत। अज्ञान की अवस्था में तो करते कुछ हैं, होता कुछ है और परिणाम कुछ और ही आता है। सबकुछ अनिश्चित जैसा होता है। परंतु ज्ञान के बाद हम अपनी ईच्छा वाला जीवन जी पाते हैं क्योंकि उसमें ज्ञान कर्म और भोग सब निश्चित हो जाते हैं। हमें पता होता है कि हमें क्या करना है, कैसे करना है, उसका परिणाम क्या आयेगा आदि सब। हमें जो चाहिए होता है, हम वो ही करते हैं और उतना ही करते हैं। ना कम और ना अधिक।

आत्मज्ञान भी और दूसरे ज्ञानों की तरह ही एक ज्ञान है। जैसे ये आवश्यक नहीं कि कोई एक मनुष्य सारे ज्ञानों को जानने की ईच्छा करे। उसी प्रकार ये आत्मज्ञान भी कोई आवश्यक नहीं है कि सभी लोग करें। कोई भी ज्ञान कर्म या भोग हमारी रूचि के अनुसार ही होता है और होना भी चाहिए। रूचि के विपरीत सबकुछ हमें दुख ही देता है और रूचि के अनुरूप हमें सुख ही मिलता है। तो ये जो कहा जाता है कि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य आत्मज्ञान की प्राप्त करना है, ये सही नहीं है। हां जिसकी ईच्छा हो वो करे इसका ज्ञान। लेकिन जिसको आत्मज्ञान नहीं होगा तो वो मनुष्य दुखी जीवन जीयेगा, ये बात सही नहीं है। नहीं तो सारे बच्चे तो अज्ञानी ही होते हैं परंतु वे तो नहीं दुखी रहते, यदि उनके पास सभी सुख के साधन हों तो। हां सुख के साधनों की कमी के कारण अवश्य दुखी दिखाई पड़ते हैं।

सभी दुसरे उपयोगी ज्ञानों की तरह ही आत्मज्ञान का सामान्य ज्ञान विद्यालय में ही दे देना चाहिए। उसके बाद जिसको इसका अनुभव भी करना हो तो वो इसमें विशेष शिक्षा में जा सकता है और बाद में यदि आध्यात्मिक विज्ञान में भी जाना चाहे तो वो उसका वैज्ञानिक भी बन सकता है। ये सारी व्यवस्था होनी चाहिए। बिल्कुल वैसे ही जैसे कि दूसरे किसी भी ज्ञान के लिए होती है। तो ये कोई आवश्यक नहीं कि सभी की रूचि आत्मज्ञान में हो। हां सभी सुखी जीवन अवश्य चाहते हैं।

तो ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें सभी अपनी रूचि के अनुसार अपना ज्ञान, कर्म और भोग को प्राप्त करते रह सकें।

इस उपनिषद में आत्मा की चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। जागतिक, स्वप्न, सुषुप्ति और चौथी। चौथी अवस्था को कोई विशेष नाम नहीं दिया गया है। उसे केवल चौथी है, ऐसा कह दिया गया है। प्रत्येक अवस्था के ज्ञान से ज्ञाता को कुछ परिणाम भी प्राप्त होते हैं, ऐसा बताया गया है।

पहले हम इन चारों अवस्थाओं को सामान्यरूप से समझेंगे। उसके बाद इन्हीं अवस्थाओं को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे। और उसके बाद इन अवस्थाओं में प्रवेश करने के लिए मैं कुछ विधियों का भी वर्णन करूंगा। जिनका प्रयोग करके हम इन अवस्थाओं में सरलता से प्रवेश कर सकते हैं।

इसको प्रारम्भ करने से पहले एक बात और मैं आपसे कहना चाहता हूं। हम सभी लोगों का ये अनुभव रहता है कि हमारे मन बुद्धि अपने आप से भी कार्य करते रहते हैं। जबकि हम चाह रहे होते हैं कि ये शांत रहें। हमारा मन चित्त से कुछ स्मृति को उठाकर, उसके बारे में चिंतन मनन करता रहता है। या यदि कोई चिंता की बात है

तो चिंता करता रहता है, जिससे हम दुखी होते रहते हैं। या कोई सुख की बात है तो मन उसे याद करता रहता है जिससे हम सुखी होते रहते हैं। या भविष्य में कुछ करना चाहिए, ऐसा चिंतन चलता रहता है आदि। और ये तबतक चलता रहता है, जबतक कि कोई अंतिम निर्णय नहीं हो जाता उस बारे में। कई बार इस प्रकार के चिंतन या चिंता आदि से हम परेशान हो जाते हैं। क्योंकि ये तब भी चलता रहता है जबकि हम नहीं चाह रहे होते। अब ऐसा क्यों होता है? इस बारे में ये उपनिषद ऐसा बताता है कि हमारे मन और बुद्धि हमारी दूसरी अवस्था, स्वप्नावस्था में स्थित रहते हैं। और ये अवस्था अवचेतन होती है। अवचेतन का अर्थ अर्धचेतन होता है अर्थात इसे आप चेतनरूप से भी कर सकते हैं और जब आप चेतनरूप से इससे कोई कार्य नहीं लेते तो ये आपके अचेतन से चालित होने लगता है। और अचेतन का यहां अर्थ है हमारी तीसरी अवस्था जिसे ये उपनिषद सुषुप्ति अवस्था के नाम से कहता है। इस सुषुप्ति अवस्था में अहम् और चित्त स्थित रहता है। अहम् यानिकि हम विभिन्न प्रकार की ईच्छाएं करते रहते हैं। जिनमें से जो पूरी हो जाती है तो उनकी तो बात ही समाप्त हो जाती है। परंतु जोकि अभी पूरी नहीं हुई हैं, उनके बारे में हम अचेतनरूप से निरंतर ईच्छा करते रहते हैं। परिणामस्वरूप अचेतनरूप से हम अपने मन और बुद्धि को सक्रिय करके रखते हैं। परंतु हमें ऐसा लगता है कि अभी तो हम विश्राम करना चाह रहे हैं तो फिर हमारा मन हमारी इस विश्राम की ईच्छा का अनुसरण क्यों नहीं कर रहा। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि भविष्य की चिंता भी तो साथ साथ हम कर रहे हैं ना कि कल को क्या होगा? उन चिंताओं से हम इतने परेशान रहते हैं कि विश्राम दूसरे पायदान पर चला जाता है। चिंता पहले पायदान पर आ जाती है। इस कारण हमारा मन उस चिंता से कैसे दूर हो सके, इस बारे में चिंतन करने लग जाता है। या इसे ऐसे कहना अधिक सही रहेगा कि हम ही मन का उपयोग उस चिंता से मुक्ति पाने के लिए करने लगते हैं। यदि हमारे समाज की या सरकार की ऐसी व्यवस्था हो जाये जिसमें कल की चिंता ना रहे तो फिर हम उसके समाधान को पहले पायदान पर नहीं लायेंगे। फिर विश्राम ही पहले पायदान पर रहेगा और हम सहज ही विश्राम में चले जायेंगे। फिर ऐसी समस्या नहीं रहेगी कि हमारे ना चाहने पर भी हमारा मन अपने आप कार्य किये जाता है। तो अब हम समझ सकते हैं कि हम ही किसी परस्थितिवश एक साथ दो प्रकार की विपरीत ईच्छाएं किये जाते हैं, एक तो विश्राम की और दूसरी किसी वर्तमान या भविष्य की चिंता से मुक्त होने की।

इस अहंकार के निर्माण में शिक्षा के अलावा हमारे चारों ओर किस प्रकार का सामाजिक परिवेष है, कैसा वातावरण है और कुल मिलाकर देखें तो लोगों के संतोष का स्तर क्या है, उनकी आर्थिक स्थिति समान है कि असमान आदि की महत्वपूर्ण

भूमिका होती है। समाज यदि पूर्ण संतोष के स्तर पर है तो उसमें उत्पन्न हुए बच्चों का अहंकार सही दिशा में ही बनेगा। जैसे जैसे हम अपने अंदर की अवस्थाओं की ओर जाएंगे तो पाएंगे कि चेतना की जागृति का स्तर कम होता चला जाता है। ये इसलिए कम होता चला जाता है अर्थात जड़ता इसलिए अधिक होती चली जाती है क्योंकि उसकी वहां उपयोगिता है। जैसे यदि स्वप्न अवस्था में पूरी जागृति हो तो हम कभी भी स्वप्न नहीं देख पायेंगे क्योंकि पूरे होश में या पूरी जागृति स्वप्न संभव नहीं है। दूसरा हमारे मन और बुद्धि का ये स्थान है। शिक्षा के माध्यम से हम अपने मन और बुद्धि को चिंतन और निर्णय का अभ्यास दे पाते हैं। जिसके कारण ये आवश्यकता होने पर अपने आप चिंतन और निर्णय के लिए गतिशील हो जाते हैं। इससे क्या होता है कि जब हम थक जाते हैं और निद्रा में जाने लगते हैं तो हम बहुत समय स्वप्नावस्था में भी रहते हैं। और अधिकतर स्वप्न हमें वो ही आते हैं जोकि हमारी समस्याओं से या हमारे सुखों से जुड़े रहते हैं। यानिकि हम एक ओर तो विश्राम भी करते रहते हैं और दूसरी ओर अपनी समस्याओं का समाधान भी खोजते रहते हैं या उन सुखों को मानसिकरूप से भोगकर सुखी होते रहते हैं। ये तभी संभव हो पाता है जबकि हमारी स्वप्नावस्था में हमारी चेतना का स्तर कम हो जाता है। अगर ये कम ना होता तो हम स्वप्न वाले विश्राम में नहीं जा पाते। इसीप्रकार हम समझ सकते हैं कि हमारी सुषुप्ति अवस्था और भी अधिक जड़ होती है प्रायः ना के बराबर ही चेतन होती है। लगभग पूरी तरह से जड़ ही होती है। और इसका उपयोग ये है कि हम उसके कारण प्रगाढ़ निद्रा में जा पाते हैं। नहीं तो हम कभी भी प्रगाढ़ निद्रा में नहीं जा पाते और कभी भी गहरा विश्राम नहीं कर पाते। हमारे अंदर जितने भी भाव और विवेक हो पाते हैं वो भी इसी सुषुप्ति अवस्था के लगभग जड़ होने के कारण ही हो पाते हैं। जागृति अवस्था में हमारे अंदर लगभग सदैव ही एक समझ बनी रहती है वो इसी कारण रहती है कि जड़ता किसी भी बात को जोर से पकड़ सकती है। हम कोई व्यक्तित्व धारण कर पाते हैं इसी कारण से। यदि सुषुप्ति अवस्था लगभग जड़ ना हो तो कोई भी व्यक्तित्व धारण किये रखना असंभव हो जायेगा। और जब कोई व्यक्तित्व ही धारण नहीं करेंगे तो हम अपने जीवन में किसी सुख को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। और सुख तो दूर की बात है, हम जीव भाव में रह ही नहीं पायेंगे।

ये सब समझना थोड़ा कठिन अवश्य है पर असंभव नहीं है। हम अपने चारों ओर यदि अवलोकन करें तो पायेंगे कि जड़ता होने के कारण ही प्रकृति को धारण किये रहा जा सकता है। लेकिन हमें एक प्रकार की चेतनता भी चाहिए, नहीं तो जो व्यक्तित्व हमने धारण किया है उसे इस संसार में अभिव्यक्त ही नहीं कर पायेंगे। और बिना अभिव्यक्ति के कोई सुख नहीं भोग पायेंगे। इसप्रकार हम समझ सकते हैं कि हमें

विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं की आवश्यकता होती है। इसीलिए आत्मा अपने आपको चार अवस्थाओं में चेतनता के अलग स्तर पर अभिव्यक्त करती है। शुन्य चेतनता से लेकर पूर्ण जाग्रति या चेतनता तक।

अब ऐसा क्यों बनाया गया है हमारा व्यक्तित्व इसको भी चाहे तो उदाहरण से समझ सकते हैं। सारी कामनाओं की प्राप्ति के लिए जागरित अवस्था है जिसे चेतन अवस्था भी कहते हैं। फिर मन और बुद्धि का स्थान हमारी स्वप्नावस्था है जोकि ज्ञान का स्थान है और इसे अवचेतन भी कहते हैं। अवचेतन माने चेतन अवस्था से बहुत कम चेतन। जिसके माध्यम से हम कोई चिंतन, निर्णय और कल्पना आदि कर पाते हैं कि जो ईच्छा हमने की उसे कैसे पूर्ण करें। और फिर सुषुप्ति अवस्था जिसमें चित्त और अहम् यनिकि हम स्थित रहते हैं। जहां से हम ईच्छा करते हैं और वो ईच्छा चित्त में ग्रहण करके रखे रहते हैं। यदि सुषुप्ति में उतनी जड़ता नहीं होगी तो वहां हम किसी भी ईच्छा को देर तक बनाये नहीं रख सकेंगे। वहां भी परिवर्तन बहुत ही शीघ्रता से होता रहेगा। ऐसा होने से हमारे चित्त में कोई स्मृति अधिक समय नहीं रहेगी। परिणाम स्वरूप हमारे जीवन में कोई ठहराव नहीं रहेगा। हम किसी व्यक्तित्व को लम्बे समय धारण नहीं रख सकेंगे। जिससे हम लोग आपस में सही से व्यवहरित नहीं कर पायेंगे। और जीवन का उददेश्य पूर्ण नहीं कर पायेंगे अर्थात् सुखी नहीं हो पायेंगे। और सोचो कि यदि हमारी वस्तुएं भी शीघ्रता से परिवर्तित हो तो कितनी समस्या हो जायेगी! हमारा मोबाईल अगले दिन कुछ और ही हो जायेगा। हमारा घर अगले दिन कूड़े के ढेर में बदल जाये तो क्या होगा? बहुत परेशानी होगी। सभी स्थान भी शीघ्रता से परिवर्तित होते रहेंगे जिसके कारण हम समझ ही नहीं पायेंगे कि हम कहां आये थे, और अब कहां आ गये हैं। इसलिए हमें परिवर्तन भी चाहिए और स्थिरता भी चाहिए। दोनों ही चाहिए होते हैं। दोनों गुण एक साथ होकर ही कोई अर्थ बना पाते हैं। यदि केवल परिवर्तन ही हो तो भी कोई अर्थ नहीं उत्पन्न होगा। यदि केवल स्थिरता ही बनी रहे तो भी कोई अर्थ उत्पन्न नहीं होगा।

ये संसार इसी प्रकार का बनाया गया है। सारी कामनाओं की प्राप्ति के लिए जागरित अवस्था को बनाया गया है। ज्ञान की प्रक्रिया के लिए स्वप्न अवस्था को बनाया गया है और उसमें जागृति का स्तर जागरित स्थान की तुलना में कम रखा गया है। इसी प्रकार सुषुप्ति स्थान को कामना करने के लिए एवं अहम् के रहने के लिए बनाया गया है। और सुषुप्ति में चेतना का स्तर बहुत ही कम रखा गया है ताकि वहां जो ईच्छा आप करो वो तबतक बनी रहे जबतक कि वो पूरी ना हो जाये अथवा आप उसमें कोई परिवर्तन ना कर दें। जो भी समझ जायें तो वो समझ सदैव वहां बनी

रहे। हमारी स्मृति बनी रहे आदि। इसके लिए आवश्यक है कि वहां चेतना का स्तर बहुत कम हो नहीं तो ये सब वहां लम्बे समय तक स्थिर नहीं बनी रह सकेंगी। हमें कोई आदत भी नहीं पड़ेगी, जिसके अभाव में हम कोई भी अभ्यास को अपने अंदर स्थिर नहीं रख सकेंगे। और कई प्रकार के कार्य हम लोग करने में असमर्थ रहेंगे। जैसे कि हम कोई वाहन नहीं चला पायेंगे। कोई मशीन नहीं चला पायेंगे। अधिकतम सारे ऐसे कार्य है जिन्हें अभ्यास के बिना या आदत के बिना सही से नहीं किया जा सकता। यहां तक कि हम कोई भाषा भी नहीं सीख पायेंगे या बोल पायेंगे क्योंकि इसके लिए भी कोई भाषा के अभ्यास या आदत की आवश्यकता होती है। हमारा जीवन लगभग असंभव होगा बिना अचेतन के या बिना सुषुप्ति के। हम किसी भी व्यक्तित्व को धारण किये नहीं रख सकेंगे। तो इन सभी बातों से हम समझ सकते हैं कि क्यों इन सभी प्रकार की अवस्थाओं का निर्माण किया गया है। जोकि पूर्ण अचेतन से पूर्ण चेतन की मात्रा का प्रयोग करके ये चारों अवस्थाओं का निर्माण किया गया है। एक पूर्ण सुखी जीवन के अस्तित्व के लिए इन सभी की आवश्यकता है। एक उदाहरण से ये बात और स्पष्ट हो सकेगी। जैसे कार को लें। तो कार में कई प्रकार की गति वाले उपकरण लगे होते हैं और बिना गति वाले भी उपकरण लगे होते हैं। और हम लोग समझ सकते हैं कि कोई भी कार बिना स्थिर उपकरणों और विभिन्न गति वाले उपकरणों के बिना सम्भव ही नहीं है। कार में जैसे गति देने के लिए एक्सिलेटर और गति को नियंत्रण करने के लिए ब्रेक लगाये होते हैं। केवल गति से या केवल ब्रेक से कार का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। उसी प्रकार मनुष्य में भी चेतना के कई सारे स्तर होते हैं। जिनके कारण हमारे जीवन में ये सब सम्भव हो पाता है। ये सब इस उपनिषद के माध्यम से हम और भी आसानी से और सम्पूर्णता से समझेंगे।

बस अब एक ही आवश्यकता शेष रह जाती है और वो है कि हम ये सब समझकर एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण कर लें जिसमें किसी भी प्रकार की समस्या उत्पन्न ना हो और सुख सभी प्रकार के उत्पन्न हों। और ये संभव है, वो भी बड़ी आसानी से। ये कार्य मैंने कर दिया है। मैं ऐसी व्यवस्था लिख चुका हूं। जिसका नाम **सम्पूर्ण समाधान** है। जिसका अध्ययन आप कर सकते हैं।

जैसी इस जाग्रत अवस्था में व्यवस्था होगी, वैसा ही निर्माण हमारी आंतरिक अवस्थाओं का होगा। बाहर यदि दुख उत्पन्न करने वाली व्यवस्था होगी तो हमारी आंतरिक स्थिति भी दुख वाली ही निर्मित होगी। उसी तरह से हम सभी इस बाहरी अवस्था में एक दूसरे से व्यवहार करेंगे। अर्थात और दुख उत्पन्न करेंगे स्वयं के लिए भी और

सबके लिए भी। यदि जाग्रत अवस्था में ऐसी व्यवस्था होगी जिससे केवल और केवल सुख ही उत्पन्न होगा तो इससे हमारी आंतरिक अवस्थाएं भी सुख वाली ही निर्मित होंगी और फिर हम इस जागरित अवस्था में भी सभी से सुख और अधिक सुख उत्पन्न करने वाला ही व्यवहार करेंगे। हमें कोई भी शत्रु जैसे नहीं दिखाई पड़ेगा बल्कि इससे विपरीत सभी मित्र ही अनुभव होंगे। खराब व्यवस्था में सब शत्रु ही अनुभव होते हैं। इसी प्रकार सही व्यवस्था में सभी मित्र ही अनुभव होंगे। हम समझ सकते हैं कि हमारा व्यवहार मित्र और शत्रु से अलग अलग प्रकार का होता है। मित्र वाला व्यवहार और अधिक सुख को उत्पन्न करने वाला होता है और शत्रु वाला व्यवहार और अधिक दुख को उत्पन्न करने वाला होता है। तो मूल बात केवल व्यवस्था को सही कर लेने की है नाकि किसी मनुष्य को बदलने की। सभी मनुष्य सही ही होते हैं। सभी अपने या अपनों के सुखों की प्राप्ति के लिए ही प्रयास करते हैं। इसमें क्या गलत है, जिसे कि हमें बदलना चाहिए? मेरी समझ में इसमें कुछ भी गलत नहीं है। ये सब स्वभाविक प्रक्रिया है और सही भी है। यदि हम सुखों को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करेंगे तो फिर इस पूरे संसार का निर्माण करने का अर्थ ही क्या रह जायेगा? यहां जीवन को जीने का अर्थ ही क्या होगा? कुछ नहीं। सब व्यर्थ ही हो जायेगा। इतना विशाल आयोजन व्यर्थ ही सिद्ध होगा। बेअर्थ ही लगेगा। जोकि हममें से कोई नहीं चाहता और भविष्य में भी कोई नहीं चाहेगा और ना ही किसी ने भूतकाल में कभी चाहा होगा।

एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं। पहाड़ों की घाटी में हम जो भी आवाज करते हैं, वो ही हमें प्रतिध्वनित होकर कई बार आती है। इसी प्रकार बाहर जैसे व्यवस्था में हम जीवन जी रहे होते हैं, उसी व्यवस्था के अनुसार ही हमारे अंतःकरण का निर्माण होता है और फिर उसी अनुसार ही हम इस संसार में प्रतिध्वनित करते हैं। यदि कोई व्यक्तित्व सही प्रकार से व्यवहरित नहीं हो रहा है तो हमें समझना चाहिए कि उसके व्यक्तित्व का निर्माण ही सही से नहीं हुआ है और इसका कारण है ये व्यवस्था, जिसमें कि वो व्यक्तित्व के निर्माण के समय जीवन जी रहा है। हम कह सकते हैं कि जैसी हमारी बाहर की व्यवस्था होगी वैसी ही हमारी अंदर की अवस्था हो जायेगी। और **जैसी अंदर की अवस्था होगी वैसा ही हम बाहर व्यवहरित होंगे। ये साधारण सा सूत्र है इस सारी व्यवस्था को समझने के लिए।**

इसे एक उदाहरण से और समझने का प्रयास करते हैं। कारखाने में एक कार का निर्माण हुआ और उस कार को आपको दिया गया परीक्षण करने को कि क्या ये कार संतोषजनक है कि नहीं। आपने उस कार को कुछ दिनों तक प्रयोग करके देखा और

पाया कि बहुत जल्दी ही आपकी कमर में दर्द हो जाता है उसके सीट पर बैठने से। आपने दूसरे लोगों को भी उस सीट पर कुछ देर बैठाकर देखा और पाया कि केवल आपको ही नहीं बल्कि सभी कमर के दर्द की समस्या उस कार की सीट से पा रहे हैं। अब आप अपनी रिपोर्ट उस कारखाने को भेज देते हैं कि इसकी सीट आरामदायक नहीं है। इस पर कारखाने के लोग और कार्य करते हैं और उसे आरामदायक बनाने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार कोई भी कार किसी कारखाने से समाज में आती है और समाज उसका प्रयोग करके उससे सम्बंधित सुख या दुख का भोग करता है। इसी प्रकार हम सरकार की संसद को एक कारखाना समझ लेते हैं जहां कि समाज के लिए एक संस्कृति का निर्माण होता है और उसके बाद उसे समाज को उपयोग करने को दिया जाता है। जिसे उपयोग करके उससे सम्बंधित सुखों या दुखों का भोग समाज करता है।

संस्कृति भी एक कार की तरह ही कुछ नीति नियमों का संकलन ही होता है। जैसे कि कार कुछ तकनीकी और पार्टस का संकलन ही होता है। यदि हमारी संस्कृति लोगों को कोई समस्या पैदा कर रही है तो हमें उस संस्कृति में तबतक परिशोधन करते जाना चाहिए जबतक की उससे किसी भी प्रकार की समस्या समाज में उत्पन्न हो रही हो। संस्कृति कोई ऐसी वस्तु नहीं होती जोकि हमारे पूर्वजों ने बना दी तो उसमें अब हम कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। हमें उसे निरंतर परिशोधित करते रहना चाहिये, जबतक की वो कोई भी दुख दे रही हो समाज में किसी भी व्यक्ति को।

किसी भी संस्कृति को धारण करने की प्रक्रिया को ही धर्म के नाम से जाना जाता है। अर्थात जो भी धारण करने योग्य हो उसे धर्म कहा जायेगा। अब यदि संस्कृति में ही समस्या हो तो फिर धर्म नहीं हो सकेगा, अधर्म ही हो जायेगा। इसलिए जब भी समाज में पता चले कि लोग दुखी हो रहे हैं तो समझ जाना चाहिए कि कहीं ना कहीं संस्कृति में कोई नीति या नियम गलत है। और जबतक उसे सही नहीं किया जायेगा तबतक उससे सम्बंधित समस्या उत्पन्न होती रहेगी और लोग उस दुख को भोगने के लिए बाध्य होंगे। इस उपनिषद से इस पर भी प्रकाश मिलता है कि हमारी संस्कृति कैसी होनी चाहिए। और कौन इसको समझ या खोज सकते हैं।

अबतक बहुत सारी संस्कृतियां लोगों ने अपनाकर देखी हैं परंतु कोई भी संस्कृति अभी तक लोगों को दुखों से मुक्त नहीं कर पायी है। हां किसी संस्कृति में कोई सुख है तो किसी में कोई और सुख। अभी तक किसी ऐसी संस्कृति का इतिहास नहीं दिखाई पड़ता कि जिसमें सारे सुख रहे हों और दुख कोई भी ना रहा हो। संस्कृति का अर्थ

ये भी कि ये मनुष्य के साथ दूसरे जीवों को भी सुखी अथवा दुखी करती है। प्रकृति को भी संतुलित अथवा असंतुलित करती है। और जबतक ऐसी कोई संस्कृति नहीं खोजी जाती जोकि हमें संमपूर्णरूप से सुखी कर सके। तबतक हमें आपस में युद्ध करने के अलावा और कोई उपाय नहीं है। और युद्ध से कोई समाधान भी नहीं होता। बस कुछ समय के लिए भय के कारण कुछ शांति जैसी हो जाती है। क्योंकि युद्ध में हारने वाला या तो मारा जाता है और या तो भय के कारण कुछ समय के लिए चुप हो जाता है और अधिक बलवान होने के उपाय में लग जाता है। जोकि भविष्य में युद्ध की तैयारी ही है। इसी लिए लोग कहते हैं कि युद्धविराम के बाद की शांति केवल नये युद्ध की तैयारी भर होती है नाकि ये कोई समाधान होता है।

ये उपनिषद कहता है कि ये चारों अवस्थाएं आत्मा की ही हैं। और एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न तो हैं परंतु कोई हीन या कोई महान नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि जो लोग इन अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो वे कोई महान हो जाते हैं। सभी समान ही रहते हैं। तात्विकरूप से सभी समान ही है चाहे वो किसी विषय के ज्ञानी हों या अज्ञानी। ज्ञान के आधार से किसी को महान नहीं समझना चाहिए। ऐसा करने से बहुत सारे दोष समाज में उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है ये आप आगे समझेंगे।

इस पुस्तक को लिखने का मेरा उददेश्य ये है कि इन अवस्थाओं को जानकर कोई ऐसी व्यवस्था बनाई जा सके जिससे कि इस उपनिषद में बताये गये परिणाम समाज में सभी के लिए उत्पन्न किये जा सकें। और प्रसन्नता की बात ये है कि मैं इन अवस्थाओं का दार्शनिक स्तर का ज्ञान और विज्ञान को जानने में सफल हो गया हूं। और एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करने में सफल हो गया हूं जिससे कि पूरी पृथ्वी को पूर्ण सुखी बनाया जा सकता है। ये व्यवस्था मैंने लिख दी है। अब आवश्यकता है कुछ ऐसे साथियों की जोकि इसे समझ सकें और दूसरे लोगों को समझा सकें। और जिन्हें आत्मज्ञान और आत्मविज्ञान में प्रवेश करना हो, वो भी कर सकें। और भविष्य के आध्यात्मिक वैज्ञानिक बन सकें।

मैं इस पुस्तक में ऐसी कई आसान विधियां भी बताने जा रहा हूं जिनके माध्यम से कोई भी जिसे कि इस विषय में रूचि हो, इन अवस्थाओं में प्रवेश कर सकेगा और वहां अपनी स्थिरता भी बना सकेगा। फिर वहां का ज्ञान विज्ञान अपनी रूचियों या आवश्यकता के अनुसार ज्ञात किया जा सकेगा। और उसका उपयोग स्वयं के लिए और समाज के सुख के लिए किया जा सकेगा। इन सभी विधियों का मैंने स्वयं उपयोग किया है। और इनके माध्यम से इन अवस्थाओं में प्रवेश किया है।

आओ अब इस मांडूक्य उपनिषद पर आते हैं। पहले उपनिषद को सामान्य ढंग से समझेंगे। उसके बाद उसे विस्तारपूर्वक समझने का प्रयास करेंगे। और फिर ध्यान की विधियों को समझकर, अवस्थाओं में प्रवेश का प्रयास करेंगे।

माण्डुक्य उपनिषद

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ।।1 ।।

ओम, यह अक्षर ही सबकुछ है। यह जो कुछ भूत, वर्तमान और भविष्य है, उसकी ही व्याख्या है। इसीलिए यह सब ओमकार ही है। इसके सिवा जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु है वह भी ओमकार ही है।

सर्वं हयोतद् ब्रहम्ायमात्मा ब्रहम् सोअयमात्मा चतुष्पात् ।।2 ।।

यह सब ब्रहम ही है। यह आत्मा भी ब्रहम ही है। वह यह आत्मा चार पादों वाला है।

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।। 3 ।।

जाग्रत अवस्था, जो बहिप्रज्ञ(बाहर यानिकि जाग्रत अवस्था का ज्ञाता) सात अंगों(सिर, दोनों कंधे से हाथ तक, छाती, पेट, दोनों कूल्हे से पैर तक) वाला, उन्नीस मुखों(पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण एवं अंतःकरण चतुष्टय यानिकि मन बुद्धि चित्त और अहंकार) वाला और स्थूल(पांच विषयों) का भोक्ता है, वह वैश्वानर पहला पाद है।

स्वप्नस्थानो अन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ।। 4 ।।

स्वप्न जिसका स्थान है तथा जो अंतःप्रज्ञ(अंदर का ज्ञाता), सात अंगों(सिर, दोनों कंधे से हाथ तक, छाती, पेट, दोनों कूल्हे से पैर तक) वाला, उन्नीस मुखों(पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण एवं अंतःकरण चतुष्टय यानिकि मन बुद्धि चित्त और अहंकार) वाला और सूक्ष्म(पांच विषयों) का भोक्ता है, वह तैजस दूसरा पाद है।

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्।

सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो हयानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ।। 5 ।।

इस स्थान में सोया हुआ किसी भोग की ईच्छा नहीं करता और ना ही कोई स्वप्न देखता है। उसे सुषुप्ति अवस्था कहते है। वह सुषुप्ति जिसका स्थान है तथा जो

एकीभूत(पंचभूत विलय होकर एक भूत हो जाता है), प्रज्ञानघन(जाग्रत और स्वप्न अवस्था का अज्ञान), आनंदमय(विश्राम की अवस्था, सुख दुख का अभाव), आनंद का भोक्ता(विश्राम का भोक्ता) और चेतनमुख(सीधे स्वयं ही ग्रहण करता है बिना किसी करण के) है। वहां ज्ञानी स्वयं ही ज्ञान का विषय होता है और कुछ नहीं। वह प्राज्ञ ही तीसरा पाद है।

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषो अन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ।। 6 ।।

यह सबका ईश्वर(सभी ईच्छाएं करने वाला) है, यह सर्वज्ञ(सबका ज्ञान करने वाला) है, यह अंतर्यामी(सबसे अंदर का आयाम है, अर्थात अब इससे परे कोई नहीं है, ये अंतिम है) है और सब योनियों(जड़ चेतन सभी) की उत्पत्ति तथा लय का मूल कारण है।

नान्तःप्रज्ञं न वहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ।

अदृष्टमैव्यवहार्यमग्राहयामलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं

प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।। 7 ।।

ना अंतःप्रज्ञ(तैजस) ना वहिष्प्रज्ञ(वैश्वानर) ना उभयप्रज्ञ(ना तैजस और ना ही वैश्वानर) है। ना प्रज्ञानघन(जाग्रत और स्वप्न अवस्था का अज्ञान) है, ना प्रज्ञ(ज्ञाता) है, ना अप्रज्ञ(ज्ञाता का अभाव) है। अद्रश्य(इंद्रीगोचर नहीं), अव्यवहार्य(वहां कोई व्यवहार नहीं है), अग्राही(ग्रहण नहीं होता), अलक्षण(कोई लक्षण नहीं हैं), अचिन्तय(चिंतन से परे अर्थात् वहां कोई चिंतन आदि की प्रक्रिया नहीं होती), अव्यपदेश्य(परिभाषा नहीं की जा सकती), एकात्म प्रत्ययसार(आत्मा का साररूप अर्थात होने की संभावना के साथ, लेकिन यहां वो ना होने की स्थिति में है अर्थात अव्यक्त है), प्रपंच का उपशम(पांचों भूतों की शांति अर्थात पांचों भूतों की अव्यक्त अवस्था), शांत(कोई हलचल नहीं), शिव(नाश होने के पश्चात की स्थिति) और अद्वैतरूप(होने का अभाव क्योंकि होने के लिए द्वैत का होना अनिवार्य है) चौथा मानते हैं। वह आत्मा है और वह जानने(इसे जाना जा सकता है) योग्य है।

सो अयमात्माध्यक्षरमोंकारो अधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च

पादा अकार उकारो मकार इति ।। 8 ।।

वह यह आत्मा अक्षर दृष्टि से ओमकार है, वह मात्राओं को विषय करके स्थित है। पाद ही मात्रा है, मात्रा ही पाद है, वे मात्रा अकार, उकार और मकार हैं।

जागरितस्थानो वैश्वानरो अकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ।। 9 ।।

जिसका जाग्रत स्थान है। वह वैश्वानर व्याप्ति और आदिमत्व के कारण पहली मात्रा अकार है। जो उपासक इसप्रकार जानता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ।।10।।

स्वप्न जिसका स्थान है, वह तैजस उत्कर्ष तथा मध्यवर्तित्व के कारण द्वितीय मात्रा उकार है। जो उपासक ऐसा जानता है, ज्ञान संतान का उत्कर्ष करता है, सबके प्रति समान होता है और उसके कुल में कोई ब्रहमज्ञान हीन नहीं होता।

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ।। 11 ।।

सुषुप्ति जिसका स्थान है, वह प्राज्ञ मान और लय के कारण तीसरी मात्रा मकार है। जो उपासक ऐसा जानता है, वह इस सम्पूर्ण जगत का मान प्रमाण(ज्ञात कर लेना) कर लेता है। और उसका लय स्थान हो जाता है।

अमात्रश्चतुर्थो अव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवो अद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ।। 12 ।।

मात्रा रहित चौथा आत्मा ही है। वह अव्यवहार्य, प्रपंचोपशम, शिव और अद्वैत है। इस प्रकार ओंकार आत्मा ही है। जो उसे इस प्रकार जानता है, वह स्वतः अपने आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है।

विस्तारित व्याख्या

पहला मंत्र

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ।।1 ।।

ओम, यह अक्षर ही सबकुछ है। यह जो कुछ भूत, वर्तमान और भविष्य है, उसकी ही व्याख्या है। इसीलिए यह सब ओमकार ही है। इसके सिवा जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु है वह भी ओमकार ही है।

पहले वाक्य में ही कह दिया गया है कि ओम ही सबकुछ है। यहां ओम को अक्षर कहा गया है। अक्षर का अर्थ होता है, जिसका अब और क्षरण ना हो सके अर्थात जिसको अब और विभाजित नहीं किया जा सकता, अब इसके पीछे नहीं जाया जा सकता, अब इसका कोई कारण नही, ये ही महाकारण है, मूल है अर्थात ये सदा से है और स्वयं से ही है। और जिस प्रकार ओम अ से प्रारम्भ होकर म् पर समाप्त हो जाता है या पूर्ण हो जाता है अर्थात उसके व्यवहार का एक निश्चित प्रारम्भ है और अन्त भी, यानिकि निश्चित दायरा है। और इस व्यवहार का निश्चित उददेश्य भी। अर्थात् इस मूल तत्व का या ओम का भी एक निश्चित फ्रेम है। जोकि इस निश्चित फ्रेम में व्यवहरित होता है। अर्थात् ये भी प्रारम्भ करता है और उसके अंत तक जाता है। इसके भी छोर हैं, इसका भी आकार है, ये कोई निराकार वस्तु नहीं है। इसके भी गुण हैं ये कोई निर्गुण तत्व नहीं है। वैसे भी आप समझ सकते हैं कि ये आदि तत्व कोई अनिश्चित वस्तु नहीं है बल्कि ये हर तरह से निश्चितता रखता है। यदि ये निश्चित नहीं होगा तब तो इसको जानना भी असंभव होगा। अर्थात् ये हमेशा ही अज्ञेय या अज्ञात बना रहेगा। और इसके बारे में कोई कुछ कह नहीं सकेगा। फिर तो जीवन को भी नहीं समझा जा सकेगा। और फिर क्या सही और क्या गलत इसका भी निर्धारण निश्चितरूप से हो नहीं सकेगा। सारा जीवन अनुमान पर ही आधारित रह जायेगा। क्योंकि मूल ही अपने आप में निश्चित नहीं होगा तो फिर शाखाओं के भी निश्चित होने का कोई उपाय नहीं रह जायेगा। और इस प्रकार जीवन ही अनिश्चित प्रकार का हो जायेगा। मतलब क्या सही और क्या गलत कुछ नहीं निर्णय कर सकेंगे। क्या धर्म और क्या अधर्म, इसका भी निर्धारण नहीं हो सकेगा।

यहां ओम से अर्थ केवल किसी ध्वनि से नहीं समझना चाहिए ओम केवल ध्वनि को ही नहीं कहते हैं। बल्कि इस ओम ध्वनि के उदाहरण से केवल इस आदि तत्व को समझाने का प्रयास किया गया है। जैसे ओम ध्वनि का एक प्रारम्भ होता है अ स्वर से

और इसका मध्य होता है उ स्वर से और इसका अंत होता है म् व्यंजन से। उसी प्रकार ये आदि तत्व भी ओम ध्वनि की तरह ही प्रारम्भ, मध्य और अंत वाला है। अर्थात् ये कोई स्थिर या केवल जड़ की तरह नहीं है बल्कि चेतन भी है, गतिशील है, परिवर्तनशील है। आदि, मध्य और अंत वाला होने से इसकी गतिशीलता या परिवर्तनशीलता का एक निश्चित दायरा है जो कि ईच्छा और प्रयास करने पर जाना जा सकता है। ये कोई अनिश्चित वस्तु नहीं है। आइये अब इसे परत दर परत जानते हुए आगे बढ़ते हैं।

विज्ञान से इस बात को समझने का प्रयास करते हैं, जैसे किसी पदार्थ को लें और उसे तोड़ते जाएं, तोड़ते जाएं जबतक कि उसे तोड़ा जा सकता है। इसे कहगें कि ये पदार्थ क्षयशील है क्योंकि इसे तोड़ना सम्भव है। परंतु तोड़ते तोड़ते पदार्थ की ऐसी भी एक अवस्था आयेगी, जबकि इसे और तोड़ना सम्भव नहीं रह जायेगा। इसका अब और विभाजन सम्भव नहीं होगा। वो उस पदार्थ की मूल ईकाई कही जायेगी। और इसी मूल ईकाई को इस उपनिषद में अक्षय कहा जा रहा हैं। क्योंकि इसका अब और क्षय सम्भव नहीं है। इसे अब इसके जैसी दूसरी ईकाइओं के साथ जोड़ा तो जा सकता है पर तोड़ा नहीं जा सकता। अक्षय को इसी अर्थ में समझना चाहिए। संस्कृत में इसका यही अर्थ है भी।

यहां यदि ओम को ध्वनि समझें तो इसमें तीन अक्षर की घ्वनि आप सुन पाओगे, जैसे अ उ और म्। जहां ये ध्वनि अ से प्रारम्भ होती है और उ से होते हुए म् पर समाप्त हो जाती है। चौथा यहां आधार के रूप में लिया गया है। यानिकि जिस आधार पर ये ओम ध्वनि हो रही है। जहां अभी कोई ध्वनि नहीं थी और फिर ध्वनि प्रारम्भ हुई, कुछ समय तक वो ध्वनि रही और उसके बाद ध्वनि समाप्त हो गयी, लेकिन आधार अभी भी है जैसे कि ये ध्वनि होने से पहले था। तो आधार का ये अर्थ है। इस आधार को ही ब्रहम् कहा गया है। जैसे ये ओम की ध्वनि हम करें तो इसमें मुख्य हम ही होंगे जोकि इस ओम की ध्वनि को कर रहे हैं। क्योंकि यदि हम ही ना हों तो इस ध्वनि को उत्पन्न करेगा कौन? यहां इस **'कौन'** को ही ब्रहम् कहा गया है। हम इस ओम की ध्वनि के समय भी हो सकते हैं और इसके बिना भी हो सकते हैं। ओम तत्व ओम की घ्वनि के समय भी है और उसके पहले भी था और इसके बाद में भी रहेगा। अर्थात् ये सदा से है। हमारा होना इस ध्वनि पर निर्भर नहीं करता बल्कि इस ध्वनि का होना हम पर निर्भर करता है। इसी प्रकार ब्रहम् जब बिना ओम की ध्वनि के रहता है तो इसे ब्रहम् तत्व कहते है और इसके द्वारा उत्पन्न घ्वनि को ब्रहम् का कार्य। जब ब्रहम् इस ओम का उच्चारण करता है तो इससे तीन ध्वनियां उत्पन्न होती

है। जिसमें अ प्रथम ध्वनि होती है, उ दूसरी ध्वनि होती है और म् तीसरी ध्वनि होती है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि ब्रहम् ओम ही है। अब यहां ओम ध्वनि को नहीं कहा जा रहा बल्कि इस ओम ध्वनि के प्रसारक ब्रहम् को कहा जा रहा है। तो पहला वाक्य कह रहा है कि ओम ही सबकुछ है अर्थात ये जो भी हम अनुभव कर पा रहे हैं, वो सबकुछ ओम ही है। चाहे वो भूतकाल, वर्तमानकाल या भविष्यकाल हो, सब ओम ही है। और इन तीनों कालों के भी जो परे है यानिकि ब्रहम्, वो भी ओम ही है। क्योंकि ये तीनों काल तो केवल होने की अवस्था में ही अस्तित्व रखते हैं। तीनों कालों के परे का अर्थ है कि जब ये ब्रहम् ना होने की अवस्था में होता है, अव्यक्त होता है, अर्थात् अक्रिय अवस्था में होता है जैसे हम सब निद्रा की अवस्था में अक्रिय होते हैं या विश्राम की अवस्था में होते हैं। उस समय हमें सभी अनुभवों का अभाव रहता है क्योंकि हम सभी तो गहरी नींद में होते हैं अर्थात अनुभव करने की स्थिति में होते ही नहीं। उस समय काल का अनुभव या कुछ भी अनुभव नहीं होता। और जब समय ही नहीं होता हमारे अनुभव में तो ये तीनों काल भी नहीं होंगे अनुभव में। तो इस प्रकार आत्मा की इन्हीं चार अवस्थाओं में से या तो नहीं होने की अवस्था में होगी या होने की अवस्था में होगी। अर्थात् हम या तो गहरी नींद में होंगे और या तो जागे हुए होंगे। नहीं होने की अवस्था एक ही है जिसे इसमें चोथे के नाम से कहा गया है। और ब्रहम् के होने में तीन अवस्थाएं हो सकती हैं, वो हैं सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रति। तो या तो ब्रहम् होने में होगा और या तो ना होने में होगा। दोनों अवस्थाएं एक साथ नहीं होंगी।

तो ओम ही ब्रहम् है और ब्रहम् ही ओम है। अर्थात ओम ध्वनि का स्वरूप ब्रहम् है और ब्रहम् से ओम की ध्वनि उत्पन्न होती है। अर्थात जो है, उससे वही उत्पन्न होता है जैसा कि वो है। अर्थात् बीज में जो होता है वही वृक्ष में व्यवहरित होता है। तो ओम से ओम की ध्वनि ही उत्पन्न होगी। इसे ऐसा समझें कि जैसे हम कोई ध्वनि करते हैं तो तभी तो कर पाते है ना जबकि वो ध्वनि हम में है? यदि हम में ये ध्वनि नहीं होती तो इसे कैसे अभिव्यक्त कर पाते? हम जो भी उत्पन्न करेंगे या अभिव्यक्त करेंगे, वो अपने से ही तो करेंगे ना? इसप्रकार हम जो भी अपने से उत्पन्न करेंगे या अभिव्यक्त करेंगे, वो तत्वतः हम ही होंगे। बस ये उपनिषद अपने पहले श्लोक में ये ही कह रहा है कि सबकुछ ओम ही है और ओम ही सबकुछ है। ओम के अलावा कुछ नहीं है।

दूसरा मंत्र

सर्वं हयोतद् ब्रहम्ायमात्मा ब्रहम् सोअयमात्मा चतुष्पात् ।।2 ।।

यह सब ब्रहम् ही है। यह आत्मा भी ब्रहम् ही है। वह यह आत्मा चार पादों वाला है।

ये उपनिषद अपने दूसरे श्लोक में कह रहा है कि ये जो अभी उपर पहले श्लोक में जो ओम है वो बह्म है। अर्थात ओम कहें चाहे ब्रह्म कहें, ये एक ही बात है। ब्रह्म का अर्थ है, विस्तार। ये जो कुछ भी है, यदि उसको एक शब्द में कहें तो उसे ब्रह्म कहेंगे भाषा के अनुसार, ब्रहम् माने सबसे बड़ा। इस दृष्टि से ओम को ब्रह्म भी कह सकते हैं। फिर इस श्लोक में आगे कहता है कि यह आत्मा भी ब्रह्म ही है। यहां आत्मा से अर्थ है जीव अर्थात् वे सारे जीव जो कि चेतन कहे जाते हैं जैसे कि हम, जोकि इच्छाएं करते हैं और उसे पूरा करने का प्रयत्न करते है और इसमें सुख का अनुभव करते है। अर्थात ओम कहो या ब्रह्म कहो, एक ही बात है।

संस्कृत भाषा में एक वस्तु के कई नाम होते हैं, जोकि उसके गुणों के आधार से होते हैं। परंतु किसी एक गुण की अधिकता होने पर वह वस्तु मुख्यतः उस एक नाम से ही प्रयोग की जाती है। लेकिन जहां उसके जिस गुण का प्रयोग कर रहे हों तो उसे उस गुणविशेष नाम से पुकारा जाता है। जैसे आपने देखा होगा कि आर्युवेद में एक ही औषधि को कई गुणों के कारण कई नामों से जाना जाता है।

फिर उपनिषद आगे कहता है कि यह आत्मा चार पादों वाला है। यानिकि इसके चार चरण हैं, जिनके माध्यम से ये विस्तार को प्राप्त होता है, या अभिव्यक्त होता है। अब आगे ये इन चार पादों के बारें में ही एक एक करके बतायेगा।

तीसरा मंत्र

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।। 3 ।।

जाग्रत अवस्था, जो बहिप्रज्ञ(बाहर का ज्ञानी यानिकि जाग्रत अवस्था का ज्ञाता) सात अंगों(सिर, दोनों कंधे से हाथ तक, छाती, पेट, दोनों कूल्हे से पैर तक) वाला, उन्नीस मुखों(पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण एवं अंतःकरण चतुष्टय यानिकि मन बुद्धि चित्त और अहंकार) वाला और स्थूल(पांच विषयों) का भोक्ता है, वह वैश्वानर पहला पाद है।

चार पादों में से पहला है जाग्रत अवस्था जिसमें कि अभी हम सब हैं। ये जाग्रत अवस्था हम सभी के लिए सार्वजनिक अवस्था है। जिसमें हम सब एक दूसरे के साथ जीवन जीते हैं। बाकि अवस्थाएं हम सबकी व्यक्तिगत होती हैं। और हमारी बाकि अवस्थाएं, इस जाग्रत अवस्था से प्रभावित होती है। जैसी हमारी दशा इस जाग्रत अवस्था में होती है, उसका प्रभाव हमारी अंदर की दोनों अवस्थाओं पर निश्चित रूप से पड़ता है। यदि हमारी जाग्रत अवस्था संतोषजनक होती है, सुखी होती है तो बाकि दो अवस्थाएं भी संतोषजनक होंगी, सुखी होंगी। परंतु यदि हमारी जाग्रत अवस्था असंतोषजनक होगी, दुखी होगी तो हमारी बाकि दोनों अवस्थाएं भी असंतोषजनक होंगी, दुखी होंगी ही। जीवन की दृष्टि से, ये जाग्रत अवस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यदि इस अवस्था को पूणरूप से निकाल दिया जाये, तो बाकि तीन अवस्थाओं का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। आत्मा के होने का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। यही वो अवस्था है जिसमें हम अपने जीवन का अधिकतम समय व्यतीत करते हैं। ये अवस्था बाकि दोनों अवस्थाओं का फलरूप है। इसे ऐसा ही स्वाभाविकरूप से बनाया गया है कि हम इसमें अधिक से अधिक समय जीवन व्यतीत कर सकें। इस अवस्था के बारें में इस उपनिषद में बताया गया है कि ये जाग्रत स्थान है आत्मा के लिए, यहां आत्मा के इस पाद को वैश्वानर का नाम दिया है। स्वाभाविकरूप से यहां आत्मा इस बाहर जगत का ज्ञाता, कर्ता और भोक्ता रूप में रहता है।

यहां आत्मा जिस भी विषय के संपर्क में आता है, उस विषय का अनुभव आत्मा को होने लगता है। फिर धीरे धीरे आत्मा की या तो उस विषय में रूचि होने लगती है या विपरीत रूचि होने लगती है और अरूचि भी हो सकती है। जिस विषय के संपर्क में आने से उसे सुख प्राप्त होता है, उसे फिर से प्राप्त करके सुखी होने की ईच्छा करने

लगता है। यदि किसी विषय के संपर्क में आने से आत्मा को दुख होने लगता है, तो उसमें उसकी विपरीत रूचि होने लगती है। इससे आत्मा ये प्रयास करने लगता है कि भविष्य में दुख देने वाले विषय से संपर्क ना होने पाये। और यदि जिस विषय के संपर्क में आने पर कोई सुख या दुख नहीं होता तो आत्मा को उस विषय में अरूचि हो जाती है। भविष्य में आत्मा ना तो ऐसे विषय की ईच्छा ही करता है और ना इस बारे में ही कोई प्रयास करता है कि संपर्क ना हो अर्थात उस विषय से उदासीन रहता है। तो इस जाग्रत अवस्था में आत्मा इन्हीं सुखों को पाने की ईच्छा और दुख को दूर करने की ईच्छा के बीच ही गति करता रहता है। आत्मा इसी प्रयास में लगा रहता है कि कैसे उसके जीवन में केवल सुख रहे। आत्मा या तो अपने सुख के लिए या तो अपनों के सुख के लिए ईच्छा करता रहता है और उसे प्राप्त करने के लिए प्रत्येक संभव प्रयास करता रहता है। और ये प्रयास मिली हुई परिस्तथियों में उसकी कुल क्षमता के अनुसार रहते हैं। कई बार ऐसा भी हो सकता है कि वो इस बात का ध्यान ही नहीं रख पाये कि उसके इस प्रयास में किसी और को दुख पैदा हो रहा है। कई बार पता होने पर भी उसे अनदेखा कर देता है क्योंकि उसे खुद को और अपनों को हर हाल में सुखी करना होता है। क्योंकि जाने और अनजाने हर जीव इस बात को जानता है कि जीवन का उददेश्य सुखी होना ही है।

ये श्लोक कह रहा है कि ये जो जाग्रत अवस्था है, ये सात अंगो वाली है। यदि हम अपने शरीर को विभिन्न अंगों में विभाजित करके देखें तो हमें ज्ञात होगा कि ये सात अंग सिर, दोनों कंधे से हाथों तक, छाती, पेट और दोनों कूल्हे से पैरों तक हैं। उन्नीस मुख है जोकि ये हैं पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण एवं अंतःकरण चतुष्टय। मुख का अर्थ होता है, जिनसे कुछ हम ग्रहण करते हों। पांच ज्ञानेन्द्रियों से हम बाहर के पंच विषयों का ग्रहण करते हैं, पांच कर्मेन्द्रियों से विभिन्न कर्मों का ग्रहण करते हैं। फिर अंदर पांच प्राण से भी विभिन्न विषयों के अनुभवों को ग्रहण करते ही हैं। और अंतःकरण के अंतर्गत मन से किसी विषय का चिंतन मनन, बुद्धि से निष्कर्ष का, चित्त से स्मृति का और अहंकार से ईच्छा आदि का ग्रहण होता है। तो इसप्रकार से उन्नीस मुख कहे जाते हैं।

इन सात अंगों और उन्नीस मुखों को स्वस्थ रखना आवश्यक है। क्योंकि इस जाग्रत अवस्था के सभी पांच विषयों के ज्ञान, कर्म और भोग के लिए इन सबकी आवश्यकता होती है। यदि ये अस्वस्थ होंगे तो हम इस जाग्रत अवस्था में सुखपूर्वक जीवन नहीं जी सकेंगे।

चौथा मंत्र

—

स्वप्नस्थानो अन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ।। 4 ।।

स्वप्न जिसका स्थान है तथा जो अंतःप्रज्ञ(अंदर का ज्ञाता), सात अंगों(सिर, दोनों कंधे से हाथ तक, छाती, पेट, दोनों कूल्हे से पैर तक) वाला, उन्नीस मुखों(पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण एवं अंतःकरण चतुष्टय यानिकि मन बुद्धि चित्त और अहंकार) वाला और सूक्ष्म(पांच विषयों) का भोक्ता है, वह तैजस दूसरा पाद है।

ये आत्मा का दूसरा पाद है, जिसका वर्णन लगभग जाग्रत अवस्था वाला ही है। बस थोड़ा सा अंतर है। हम सबको स्वप्न देखने का तो ज्ञान है ही। ये श्लोक उसी स्थान के बारे में कह रहा है। उस अवस्था के चेतन का नाम तैजस है। तैजस का अर्थ होता है, तेज से बना हुआ अर्थात प्रकाश से बना हुआ। हमारा जो स्वप्न स्थान है, वहां सब प्रकाश की सहायता से ही बना होता है। ये श्लोक उसे सुक्ष्म कह कर भी इंगित कर रहा है। स्वप्न अवस्था में भी वही सात अंग और उन्नीस मुख ही हैं, लेकिन सुक्ष्मरूप से हैं। इस अवस्था में आत्मा अंदर का ज्ञाता होता है क्योंकि स्वप्न तो हमारे अंदर ही होता है। स्वप्न अवस्था व्यक्तिगत है। ये जाग्रत अवस्था की तरह सार्वजनिक नहीं होती है। स्वप्न में जाग्रति का स्तर भी जाग्रत अवस्था की तुलना में काफी कम होता है। इसीलिए वहां स्वप्न एक धारावत जैसे में चलते रहते है। थोड़ी थोड़ी देर में परिवर्तित होते रहते हैं। अधिकतम स्वप्न बिना तर्क के ही होते हैं। स्वप्न अवस्था में हम उसे जाग्रत अवस्था जैसा ही वास्तविक समझ रहे होते हैं। जाग्रत अवस्था में आने पर ही हमें ज्ञात होता है कि हम स्वप्न अवस्था में थे नाकि जाग्रत में। पर ये भी आत्मा का एक पाद ही है जिसमें आत्मा जाग्रत से तो बहुत कम, परंतु फिर भी काफी समय प्रतिदिन रहता है। कोई 8 घंटे के आसपास। इस अवस्था के ज्ञाता को अंतःप्रज्ञ कहा जाता है। क्योंकि जाग्रत अवस्था ही मुख्य है और उसकी तुलना में ये हमारे अंदर है। और अधिकतम हमारे स्वप्न हमारी ईच्छाओं की पूर्ति या नापूर्ति पर ही आधारित होते हैं। अर्थात् हमारे लोभ यानिकि सुखी होने की ईच्छा या भय यानिकि दुख से बचने की ईच्छा के आस पास ही सारे स्वप्न बने होते हैं।

पांचवा मंत्र

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्।

सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो हयानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ।। 5 ।।

इस स्थान में सोया हुआ किसी भोग की ईच्छा नहीं करता और ना ही कोई स्वप्न देखता है। उसे सुषुप्ति अवस्था कहते है। वह, सुषुप्ति जिसका स्थान है तथा जो एकीभूत(पंचभूत विलय होकर एक भूत हो जाता है), प्रज्ञानघन(जाग्रत और स्वप्न अवस्था का अज्ञान), आनंदमय(विश्राम की अवस्था, सुख दुख का अभाव), आनंद का भोक्ता और चेतनमुख(सीधे स्वयं ही ग्रहण करता है बिना किसी करण के) है। वहां ज्ञानी स्वयं ही ज्ञान का विषय होता है और कुछ नहीं। वह प्राज्ञ ही तीसरा पाद है।

अब जैसा कि कुछ लोग कहते हैं कि सुषुप्ति अवस्था में भी हम जागे रहते हैं, नहीं तो हमें कैसे ज्ञात होता है कि वहां कुछ नहीं था। इसप्रकार हम वहां इस संसार और स्वप्न संसार के अभाव के अनुभवकर्ता होते हैं। जबकि वास्तविक बात ये नहीं है। नहीं तो हम सोचें कि जब हम जागे रहते हैं तो हमें बाकि की दोनों अवस्थाओं की याद बनी रहती है परंतु स्वप्न अवस्था में या सुषुप्ति अवस्था में इस जाग्रत संसार की कोई स्मृति बनी नहीं रहती। यदि इन दोनों अवस्थाओं में भी हमारी चेतना 100 प्रतिशत चेतनित होती तो हमें प्रत्येक अवस्था में बाकि की दोनों अवस्थाओं का ज्ञान भी बना रहता कि नहीं? लेकिन हम सब अपने अनुभवों से ये जानते है कि जाग्रत अवस्था में तो हमें ये पता रहता है कि हम स्वप्न देखते हैं और यदा कदा सुषुप्ति में भी जाते हैं। परंतु स्वप्न और सुषुप्ति में हमें ये ज्ञान नहीं रहता है कि जाग्रत भी कोई हमारी अवस्था है। और ऐसा इसलिए होता है कि हम लोग विश्राम में जा सकें और विश्राम का सुख प्राप्त कर सकें, तरो ताजा हो सकें। जाग्रत अवस्था में सुखी होने के लिए फिर से तैयार हो सकें। यदि हमारी चेतना का स्तर कम नहीं होगा तो हम लोग फिर विश्राम में नहीं जा सकेंगे। और बिना विश्राम के सही से जीना ही असंभव हो जायेगा जाग्रत अवस्था में। तो ये कहना कि हम स्वप्न और सुषुप्ति में भी जाग्रत की तरह ही चेतन रहते हैं, ये सही नहीं होगा। वहां हमारी चेतना का स्तर जाग्रत अवस्था की तुलना में कम होता जाता है। यदि हम जाग्रत अवस्था में चेतन के स्तर का इन दूसरी अवस्थाओं में चेतन के स्तर से तुलना करें तो अधिक अच्छे से समझ सकते हैं। यदि हम जाग्रत अवस्था में चेतना का स्तर 100 प्रतिशत मानें तो स्वप्न अवस्था में चेतना का स्तर लगभग 30 प्रतिशत ही होगा। और सुषुप्ति अवस्था में केवल 5

प्रतिशत ही होगा। 5 प्रतिशत चेतना का स्तर बहुत ही कम होता है। इसी लिए वहां हम कुछ अनुभव नहीं कर पाते। वहां हमारा अंतःकरण बिल्कुल सुषुप्त अवस्था में रहता है। इसीलिए इस अवस्था का नामकरण भी सुषुप्ति किया गया है। जिससे हम समझ सकते हैं कि वहां सबकुछ सुषुप्त ही रहता है। इसीलिए सुषुप्ति अवस्था में हमें तब ही कुछ अनुभव होता है जबकि हमें कोई बहुत सघन अनुभव हो, जैसे कि कोई हमारे शरीर को बहुत जोर से हिलाये या कोई बहुत जोर से हमारे पास कोई ध्वनि करें आदि। नहीं तो समान्यतः हम पूरा विश्राम होने के बाद ही सुषुप्ति अवस्था से बाहर आते हैं। विश्राम पूरा होने तक हम अल्प चेतन ही बने रहते हैं। इस अवस्था को अचेतन के नाम से भी जाना जाता है। अचेतन का अर्थ होता है जड़ यनिकि पूरी तरह से प्राकृत। चेतना वहां नाम के लिए ही होती है। और विश्राम पूरा हो जाने पर हम जाग्रत अवस्था में आ जाते है यहां के सुखों को प्राप्त करने के लिए। अब तो ऐसी डिजिटल घड़ियां भी आती है जोकि हमें ये बता देती हैं कि सोते समय हम कितना समय स्वप्न में थे और कितना समय गहरी निद्रा में थे।

स्वभाविक रूप से स्वप्न अवस्था में भी हमें ये ज्ञान नहीं रहता कि हम स्वप्न अवस्था में हैं। वहां जो भी हम स्वप्न देखते हैं वो सारे तो सबको स्मृत भी नहीं रहते जबकि जाग्रत अवस्था में स्मृति अधिक अच्छा कार्य करती है। और ऐसा इसीलिए हो पाता है क्योंकि जाग्रत में चेतना का स्तर बाकि दोनों में चेतना के स्तर से अधिक होता है। चेतना के स्तर के आधार से ही हमारी स्मृति का स्तर भी तय होता है। जितना चेतना का स्तर अधिक होगा उतना ही स्मृति का या पूरे अंतःकरण का स्तर होगा। इसका प्रभाव हमारी वाह्यकरण पर भी उसी प्रकार होता है। यदि हम कुछ ऐसे पदार्थ का सेवन करते है जिससे हमारी चेतना के स्तर पर प्रभाव पड़ता है। अर्थात यदि हमारी चेतना का स्तर अधिक हो जाता है तो हमारा बाह्यकरण और अंतःकरण का स्तर भी उसी अनुपात में अधिक हो जायेगा। और यदि हमारी चेतना का स्तर कम हो जायेगा तो उससे हमारा बाह्यकरण और अंतःकरण का स्तर भी उसी अनुपात में कम हो जायेगा, जाग्रत अवस्था में भी। उदाहरण के लिए यदि बेहोश करने वाला कोई पदार्थ खा लिया जाये तो हमारा बाहयकरण और अंतःकरण शिथिल होते जाते हैं। और अधिक लेने पर पूरी तरह से शिथिल हो जाते हैं। बहुत अधिक लेने पर मृत्यु को भी प्राप्त हो सकते हैं अर्थात् सदैव के लिए शिथिल हो जाते हैं।

जैसे बीज में वृक्ष सोया हुआ है। इसका अर्थ वृक्ष सुषुप्त हो गया बीज में। तो बीज, वृक्ष की सुषुप्ति अवस्था हुई। इसी प्रकार चेतन भी अचेतन होकर ही विश्राम कर सकता है। और विशेष विश्राम के लिए तो उसे भी कुछ समय के लिए पूर्णतया 'ना' होने की अवस्था में जाना पड़ेगा। नहीं तो चेतन यानिकि हम विश्राम में नहीं जा

सकेंगे। और जैसे ही हमारा विश्राम पूरा होता है, हम स्वप्न अवस्था या जाग्रत अवस्था में आ जाते हैं अर्थात हम सक्रिय हो जाते है। हमारी दो ही अवस्थाएं हैं, अक्रिय और सक्रिय। अक्रिय अवस्था विश्राम के लिए होती है और सक्रिय अवस्था विभिन्न प्रकार के सुखों को प्राप्त करने के लिए होती है। अक्रिय अवस्था में केवल तुरीय अवस्था ही आती है परंतु सक्रिय अवस्था में तीनों(जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) अवस्थाएं आती है।

छठवां मंत्र

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषो अन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ।। 6 ।।

यह सबका ईश्वर(सभी ईच्छाएं करने वाला) है, यह सर्वज्ञ(सबका ज्ञान करने वाला) है, यह अंतर्यामी(सबसे अंदर का आयाम है, अर्थात अब इससे परे कोई नहीं है, ये अंतिम है और सब योनियों(जड़ चेतन सभी) की उत्पत्ति तथा लय का मूल कारण है।

ये श्लोक किसी अवस्था के बारे में नहीं है वरन शुद्ध अहम के बारे में है। यह सबका ईश्वर है का अर्थ है– ये जो हम सभी ईच्छा कर लेते हैं विभिन्न प्रकार की, ये उस चेतन के इसी गुण के कारण संभव हो पाता है। अब जिसमें जितना ये गुण अधिक होगा, वो उतना ही ईच्छा का वरण करने में सक्षम होगा, उतनी ही उसकी मालकियत अधिक होगी। यहां ईच्छा का वरण(सही चुनाव) करने से अर्थ समझें कि जैसे हमारे अंदर विभिन्न परस्थितियों में विभिन्न प्रकार की ईच्छाएं उत्पन्न होती रहती हैं। तो जिनमें ईच्छाओं को वरण करने का गुण कमजोर होगा, वे लोग उन ईच्छाओं के अनुसार चलने लग जाते हैं। वे उन ईच्छाओं में से वरण(सही चुनाव) नहीं करते बल्कि ईच्छा के अनुसार ही उनकी गति हो जाती है। जिनमें ईच्छा के वरण करने का गुण अधिक मात्रा में होता है, वे केवल उन ईच्छाओं को ही स्वीकार करते हैं जिन्हें वे स्वीकार करना चाहते हैं, बाकि ईच्छाओं को छोड़ देते हैं।

एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं। एक आदमी किसी वृक्ष के नीचे अकेला सोया हुआ है। उसके पास धन की एक पोटली भी रखी हुई है। तभी वहां से एक दूसरा आदमी गुज़रता है और देखता है कि आदमी सोया हुआ है और उसके पास एक धन की पोटली रखी हुई है। जिसको ये आदमी यदि चाहे तो आसानी से उठाकर ले जा सकता है। ऐसी परस्थिति में इस आदमी के अंदर कई प्रकार के विकल्प उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे कि इस धन को चुरा ले या नहीं चुराये, किसी का

धन चुराना अच्छी बात नहीं है या ये आदमी ऐसा भी चिंतन कर सकता है कि हो सकता है कि सोये हुए आदमी को धन की अत्यधिक आवश्यकता हो, जिसके ना होने पर इसका जीवन बुरी तरह से प्रभावित हो जाये। जोकि चिंतन करने वाला आदमी ना चाहता हो। इस प्रकार इस आदमी के अंदर कई प्रकार के विकल्प उत्पन्न हो सकते हैं। अब यहां तीन सम्भावित प्रकार हो सकते हैं। एक सम्भावना ये कि आदमी आते ही जैसे ही उस पोटली को देखें और बस उठाकर चल दे। दूसरी सम्भावना कि ये आदमी कई प्रकार के विकल्पों से घिर जायें और कोई भी निर्णय पर ना पहुंच पाये। और तीसरी सम्भावना ये कि आदमी अच्छे से चिंतन करके किसी निर्णय पर पहुंच जाये। इस उदाहरण में जो तीसरी सम्भावना है, उसे ही कहा जायेगा कि ये आदमी अपनी ईच्छा का वरण करने की स्थिति में है। पहली सम्भावना में तो आदमी ईच्छा के अनुसार ही गति कर रहा है। अर्थात कोई भी ईच्छा उत्पन्न होगी तो ये आदमी उस ईच्छा के अनुरूप ही गति करेगा। इसका अर्थ ये आदमी ईच्छा का वरण नहीं कर रहा है बल्कि ईच्छा के उत्पन्न होते ही उसे क्रिया में परिवर्तित कर दे रहा है। दूसरी सम्भावना में ये आदमी किसी भी निर्णय पर पहुंच ही नहीं रहा है। ये आदमी प्रयास तो कर रहा है किसी निर्णय पर पहुंचने के लिए परंतु पहुंच नहीं पा रहा है। तो ऐसा आदमी क्रिया में उतर ही नहीं पायेगा क्योंकि वो ईच्छा का वरण भी नहीं कर रहा है कि क्या करे और क्या ना करे। तो ये बीच की सम्भावना है कि इस अवस्था में ये आदमी ईच्छा के अनुसार गति नहीं कर रहा वरन ईच्छा को वरण करने के प्रयास में है लेकिन चूंकि किसी निर्णय पर पहुंच नहीं पा रहा इसलिए कोई ईच्छा को वरण नहीं कर पा रहा। जैसे ही किसी निर्णय पर पहुंचेगा तो उस ईच्छा का वरण कर लेगा। जोकि तीसरी सम्भावना होगी। तीसरी सम्भावना में वो किसी विकल्प का चुनाव कर लेता है और उसके अनुसार गति कर लेता है। इसे ही ईच्छा का वरण करना कहेंगे। कि विभिन्न विकल्प होने पर वो किसी एक विकल्प को संकल्प बनाता है और फिर उस आधार से कार्य करता है। और उसके आधार से अपने जीवन को गति देता है। तो ईश्वर का अर्थ हुआ कि सही ईच्छा को उत्पन्न करने की योग्यता। जिसमें ये योग्यता जितनी अधिक होगी वो उतना ही ईश्वर कहलायेगा।

ये जो चेतन है, ये सर्वज्ञ है अर्थात इसमें कुछ भी जानने का गुण है। हम सब जो कुछ भी जान पाते हैं वो इसी गुण के कारण ही जान पाते हैं। तो इसमें भी यही है कि जिसमें जितनी मात्रा में जानने का गुण होगा और जिसमें रूचि होगी, वो आदमी उतना ही अधिकता से जान सकेगा उस विषय के बारे में।

और ये मंत्र आगे कहता है कि चेतन अंतर्यामी है। अर्थात ये सबसे अधिक अंदर का आयाम है, अब इससे आगे कुछ नहीं है, ये अंतिम है, इससे परे कुछ भी नहीं है,

इससे ही प्रारम्भ होता है। सुषुप्ति ही सबसे अंदर का आयाम है। इससे ही कुछ भी होने का प्रारम्भ होता है। यही वो अवस्था है जिसमें हमारा 'होना' हो पाता है। अंतर्यामी का अर्थ होता है– वो आयाम जिसमें हम हों। तो इस प्रकार से सुषुप्ति ही अंतर्याम है या कहें कि अंतर आयाम है। हमारा अर्थात अहम् का निवास स्थान सुषुप्ति है।

आगे मंत्र कह रहा है कि चेतन सभी की योनि है। योनि का अर्थ– उत्पत्ति स्थान। अर्थात जो भी कुछ उत्पन्न हो रहा है यहां वो सब अंतिमरूप से इसी से उत्पन्न होता है। और जब लय होता है तो वो भी स्पष्ट ही है कि इसी में होगा। उत्पत्ति स्थान और लय स्थान एक ही होते हैं। यानिकि सृष्टि के उत्पन्न होने में ये प्रथम होता है और सृष्टि के लय होने में ये अंतिम होता है। तो यही प्रथम और अंतिम है। सृष्टि का प्रारम्भ और लय इसी चेतन में होता है। इसप्रकार ये चेतन ही किसी प्रारम्भ और अंत के लिए मूल कारण है। चेतन के बिना ना तो कोई प्रारम्भ हो सकता है और फिर अंत का तो प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होगा।

इस बात को समझें कि चेतन के बिना क्यों कोई प्रारम्भ नहीं हो सकता। चेतन से अभिप्राय है कि जो ईच्छा कर सके। अब जबतक कोई तत्व ईच्छा करने में समर्थ नहीं होगा तो कोई प्रारम्भ कैसे हो सकता है। यहां इस संसार में भी देख सकते हैं कि जबतक हम कुछ प्रारम्भ करने की ईच्छा नहीं करते तबतक कुछ भी प्रारम्भ नहीं होता। उदाहरण के लिए मान लिया कि किसी ने कोई व्यवस्था का निर्माण करने की ईच्छा की। ईच्छा के बाद उसके निर्माण का कार्य किया। यदि उस व्यवस्था को दूसरे लोगों ने भी स्वीकार किया अर्थात उन्होंने भी अपनी ईच्छा प्रकट की कि ये अच्छी व्यवस्था है, इसको समाज में स्थापित करना चाहिए। उसके बाद उस व्यवस्था को स्थापित किया गया। उसके बाद उस व्यवस्था के अनुरूप सभी जीवन जीने लगे। और कालांतर में उससे भी अच्छी व्यवस्था की किसी ने खोज की और उसको समाज के सामने रखा, तो यदि समाज को ये व्यवस्था पहले वाली व्यवस्था से अधिक सुखकर लगी तो समाज ने ईच्छा की कि पहली व्यवस्था का अंत कर दिया जाये और इस दूसरी व्यवस्था को प्रारम्भ किया जाये। इस उदाहरण में समाज को यदि समूह चेतन समझें तो ये समूह चेतन ही एक व्यवस्था को प्रारम्भ कर रहा है और फिर बाद में अंत कर दे रहा है। यानिकि ये चेतन ही किसी का प्रारम्भ है और ये चेतन ही किसी का अंत है। क्योंकि प्रारम्भ का, दिशा का और अंत का निर्णय ये चेतन ही ले रहा है और उस निर्णय के अनुरूप ही गति तय कर रहा है। इसी प्रकार से समष्टि चेतन भी प्रारम्भ और अंत कर ले रहा है।

सातवां मंत्र

नान्तःप्रज्ञं न वहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।

अदृष्टमैव्यवहार्यमग्राहयामलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं

प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।। 7 ।।

ना अंतःप्रज्ञ(तैजस, स्वप्न अवस्था का ज्ञाता) ना वहिष्प्रज्ञ(वैश्वानर, जाग्रत अवस्था का ज्ञाता) ना उभयप्रज्ञ(ना स्वप्न और ना ही जाग्रत अवस्था दोनों का ज्ञाता) है। ना प्रज्ञानघन(जाग्रत और स्वप्न अवस्था का अज्ञानी) है, ना प्रज्ञ(ज्ञाता) है, ना अप्रज्ञ(ज्ञाता का अभाव) है। अद्रश्य(इंद्रीगोचर नहीं, इंद्रियों से जिसका ज्ञान नहीं होता), अव्यवहार्य(वहां कोई व्यवहार नहीं है), अग्राही(कुछ भी ग्रहण नहीं होता), अलक्षण(कोई लक्षण नहीं हैं), अचिन्तय(चिंतन से परे), अव्यपदेश्य(परिभाषा नहीं की जा सकती), एकात्म प्रत्ययसार(आत्मा का साररूप अर्थात होने की संभावना के साथ, लेकिन यहां वो ना होने की स्थिति में है अर्थात अव्यक्त है), प्रपंच का उपशम(पांचों भूतों की शांति अर्थात पांचों भूतों की अव्यक्त अवस्था), शांत(कोई हलचल नहीं), शिव(नाश होने के पश्चात की स्थिति) और अद्वैतरूप(होने की अवस्था का अभाव क्योंकि होने के लिए द्वैत का होना अनिवार्य है) चौथा मानते हैं। वही आत्मा है और वह जानने(इसे जाना जा सकता है) योग्य है।

इसे ऐसा समझें कि ये आत्मा की अव्यक्त अवस्था के बारे में बताया जा रहा है। इस मंत्र में चेतन के बारे में और इस अवस्था के बारें में, दोनों के बारे में बताया गया है कि दोनों की क्या स्थिति रहती है। अर्थात व्यक्त अवस्थाओं के या कहें कि द्वैत अवस्थाओं के जितने भी गुण होते हैं, जितने भी कार्य होते हैं या जितने भी अनुभव होते हैं या और जो भी कुछ होता है, उस सबका अव्यक्त अवस्था में पूर्णतः अभाव हो जाता है।

उदाहरण के लिए मान लो कि आपके सामने कोई वस्तु जैसे कि एक कार खड़ी है। वो अपने सारे गुणों और कार्यों के साथ खड़ी होगी। अब कल्पना करो कि ये कार वहां से चली जाती है और आपके लिए अव्यक्त हो जाती है, तो इस अव्यक्त अवस्था में कार के सारे गुण आदि भी अव्यक्त हो जायेंगे। और अब आपको कोई पूछे कि आप कार की अव्यक्त अवस्था का वर्णन करो। तो आप यही कहोगे कि भाई अव्यक्त अवस्था का वर्णन संभव नहीं है। अधिक से अधिक यही कहोगे कि अब कार नहीं है, पहले थी। जब कोई वस्तु अव्यक्त हो गई तो अब इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा

सकता कि वो वस्तु अब अव्यक्त हो चुकी है। हां जब फिर से व्यक्त होगी तो तब उसके गुण आदि का वर्णन आप कर सकते हैं कि उसका ये आकार है, ये रूप रंग है, इतनी गति से चलती है आदि। पर जब अव्यक्त है तबतक थोड़े ही ना कहोगे कि ये इसका आकार है, लाल रंग की है, 200 किलोमीटर की गति से चलती है आदि। वर्णन कुछ होने का किया जाता है नाकि ना होने का। ना होने का तो बस ये ही कह सकते हैं कि बस नहीं है, अव्यक्त हो गयी। इसी पर बात समाप्त हो जाती है। इसीलिए अव्यक्त अवस्था का या चेतन की अव्यक्त अवस्था का कोई वर्णन संभव नहीं है। क्योंकि उस अवस्था में कुछ हो तब तो कुछ वर्णन करें ना? जब कुछ है ही नहीं तो वर्णन क्या करें। वर्णन करने के लिए तो कुछ होना आवश्यक है। कुछ होने के वर्णन में तो बहुत कुछ कहा जा सकता है लेकिन ना होने में तो बात ही समाप्त हो गयी।

इस मंत्र में ये ही समझाने का प्रयास किया गया है कि ये जो चौथी अवस्था है, ये आत्मा की अव्यक्त अवस्था है। जिसमें सारे गुण, धर्म, कार्य आदि सब का अभाव हो जाता है। और अंत में अव्यक्त कह कर बात ही समाप्त कर दी जाती है। अव्यक्त के बारे में कोई भी प्रश्न बनता ही नहीं। अगर कोई आदमी अव्यक्त के बारे में कोई प्रश्न पूछता है तो इससे ये समझना चाहिए कि प्रश्नकर्ता को अव्यक्त की समझ नहीं है। तो उसे पहले अव्यक्त का क्या अर्थ होता है, ये विस्तार से समझाना चाहिए। जैसे ही वो अव्यक्त शब्द का अर्थ समझेगा तो उसे आत्मा की अव्यक्त अवस्था भी समझ आ जायेगी। क्योंकि सभी की अव्यक्त अवस्था एक ही जैसी होती है। क्योंकि अभाव सबका एक ही जैसा होता है। अभाव विभिन्न प्रकार का नहीं होता। हां, होना विभिन्न प्रकार का हो सकता है परंतु ना होना तो एक ही जैसा होता है, बस नहीं है। इसलिए इस अवस्था को कोई नाम भी नहीं दिया गया। क्योंकि नाम तो किसी ना किसी गुण के आधार से ही दे सकते हैं। क्योंकि यदि कोई नाम दिया जाता तो उससे कोई ना कोई अर्थ आ जाता है। इसलिए केवल चौथी अवस्था बोलकर बात समाप्त कर दी। और साथ में ये भी कहा कि ये आत्मा है। अर्थात ये भी आत्मा की एक अवस्था ही है। जिसमें वो अव्यक्त हो जाती है। और फिर मंत्र कह रहा है कि ये जानने योग्य है। अर्थात अभाव को या अव्यक्त को भी जाना जा सकता है। ये अवस्था अव्यक्त अवश्य है परंतु इसका भी ज्ञान किया जा सकता है। ये कोई ज्ञान से बाहर नहीं है। और ये सही बात ही है। हम लोगों को भी व्यवहार में जिस प्रकार किसी वस्तु के होने का ज्ञान होता है उसी प्रकार उसके अभाव का भी ज्ञान होता है। जैसे कार अभी यहां थी। और जैसे कार अभी यहां नहीं है। तो उसके होने और ना होने का दोनों का ज्ञान हमें होता ही है। और केवल कार का ही नहीं स्वयं के भी

होने और ना होने का ज्ञान हमें इसी प्रकार से होता है। जब हम कभी बहुत ही गहरी निद्रा में चले जाते हैं और समय का भान भी नहीं रहता क्योंकि स्वयं का भी कोई भान नहीं रहता। जागने पर हमें तो लगता है कि जैसे हम तो अभी थोड़ी देर पहले ही सोये थे परंतु दूसरे माध्यमों से ज्ञात होता है कि बहुत समय पहले सोये थे। अर्थात उतने समय हम ना होने की अवस्था में थे। तो इसप्रकार हम अपने ना होने की अवस्था का भी ज्ञान कर लेते हैं। अर्थात हमें हमारे होने का ही नहीं बल्कि ना होने का भी ज्ञान होता है। यही मंत्र कह रहा है कि इस अव्यक्त या अभाव को भी जान सकते हैं।

आठवां मंत्र

सो अयमात्माध्यक्षरमोंकारो अधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च

पादा अकार उकारो मकार इति ।। 8 ।।

वह यह आत्मा अक्षर दृष्टि से ओमकार है, वह मात्राओं को विषय करके स्थित है। पाद ही मात्रा है, मात्रा ही पाद है, वे मात्रा अकार, उकार और मकार हैं।

यहां अक्षर का तात्पर्य अविनाशी से लेना चाहिए। अर्थात जिसका विनाश नहीं होता। इसका अर्थ ये है कि अब हम आत्मा से और पीछे नहीं जा सकते। ये पीछे जाने का अंतिम बिंदु है। अब इसका नाश संभव नहीं है। इसको ऐसे समझें कि जैसे प्रलयकाल में सभी जीव पृथ्वी में लय हो जायेंगे, फिर पृथ्वी जल में लय हो जायेगी, जल अग्नि में लय हो जायेगा, अग्नि वायु में लय हो जायेगी, वायु आकाश में लय हो जायेगा, फिर आकाश अपने मूल कारण अव्यक्त आत्मा में लय हो जायेगा या बीजरूप हो जायेगा। और इस लय का क्रम यहां रूक जायेगा। क्योंकि अव्यक्त होने के बाद अब और गति संभव ही नहीं है। अब हम ये नहीं कह सकते कि अव्यक्त अवस्था भी लय हो जायेगी किसी में। क्योंकि अव्यक्त का अर्थ ही होता है कि अब बात समाप्त। अब कुछ नहीं बचा लय होने को। सबकुछ लय हो चुका। इसी को अक्षर या अविनाशी हम कह सकते हैं। आकाश ही प्रथम अभिव्यक्त होता है। तो यदि आकाश का लय करेंगे तो बस ये ही होगा कि आकाश अव्यक्त हो जायेगा अर्थात् आकाश निष्क्रय हो जायेगा। और कुछ तो संभव नहीं है। आकाश या तो व्यक्त हो सकता है और या अव्यक्त हो सकता है। तीसरी कोई संभावना है नहीं आकाश की। क्योंकि कुछ और होने के लिए सर्वप्रथम आकाश तो चाहिए ना? कोई वस्तु व्यक्त होगी कहां बिना आकाश के? और ये कारण आकाश ही प्रथम अभिव्यक्ति होती है चेतन की।

चेतन प्रथमतः कारण आकाश ही होता है। जिसमें केवल होने का भाव ही रहता है। उसके बाद कारण आकाश से कारण वायु और इसीप्रकार से कारण पृथ्वी तक अभिव्यक्ति होते हुए आत्मा पूर्णतः अभिव्यक्त हो चुका होता है। एक प्रथम पूर्ण ईकाई। एक जीवित अणु कह सकते हैं इसको। ये चेतन और अचेतन दोनों गुणों से युक्त होता है। प्रथमतः ये चेतन है लेकिन ईच्छानुसार ये अचेतन भी हो सकता है। इसके बाद वो इस संसार को प्रकृति के रूप में कल्पित करता है और फिर अपनी कल्पित प्रकृति के अनुसार वो सुक्ष्म संसार होते हुए इस स्थूल संसार के रूप में अभिव्यक्ति हो जाता है, जिसमें कि अभी हम लोग जी रहे हैं। इसी संसार का हम भी एक हिस्सा हैं। इसे हम अपने अंदर भी ज्ञात कर सकते हैं। हमारे अंदर भी जब हम निद्रा के बाद उठते हैं तो प्रथम हमें अपने होने का अनुभव होता है बिना किसी व्यक्तित्व के। ये हमारा शुद्ध होना होता है। आकाश यानिकि हम कोई ईच्छा करते हैं इसी ईच्छा करने को वायु समझ सकते हैं। ईच्छा पूर्ण कैसे हो, इस पर कार्य प्रारम्भ हो जाता है इस कार्य प्रारम्भ होने को अग्नि समझ सकते हैं। इस प्रक्रिया से कई विकल्प उत्पन्न होने लगते है कि इस प्रकार करें कि उस प्रकार करें। इसे जल समझ सकते हैं। और अंत में उस ईच्छा को पूर्ण करने के लिए इस संसार में पहला चरण प्रारम्भ कर देते हैं और तबतक करते हैं जबतक कि वो ईच्छा पूर्ण नहीं हो जाती है। इस पहले चरण को ही पृथ्वी तत्व समझ सकते हैं। इस प्रकार हम एक पूर्ण इकाई के रूप में जाग्रत हो जाते हैं। एक या अनेक ईच्छाओं के साथ। और इसप्रकार हम अपना जीवन प्रत्येक दिन प्रारम्भ करते हैं। और रात में इसको उल्टे क्रम में लय करते हुए सो जाते हैं अर्थात अव्यक्त हो जाते हैं। हमारा शरीर तो समष्टि के कारण अव्यक्त नहीं हो पाता, वो व्यक्त ही बना रहता है। परंतु हम चेतन अव्यक्त हो जाते हैं और अगले दिन फिर से व्यक्त हो जाते हैं यदि हमारा शरीर व्यक्त रहता है तो। यदि शरीर जीवित अवस्था में नहीं रहता तो फिर बिना शरीर के व्यक्त नहीं हो पाते।

तो अक्षय का अर्थ हम भली भांति समझ गये होंगे। इसे विज्ञान के माध्यम से भी समझने का प्रयास करते हैं। विज्ञान के अनुसार यदि हम पदार्थ को तोड़ते ही चले जायें तो पदार्थ की एक ऐसी अवस्था आ जायेगी कि अब उसे और नहीं तोड़ा जा सकेगा। विज्ञान उसे पदार्थ की अविभाजित अवस्था कहता है। विज्ञान कहता है कि अब और पीछे जाना संभव नहीं है। ये ही प्रथम ईकाइ है इस संसार की। तो इसे संस्कृत भाषा में अक्षय अवस्था कहते है। माने अब जिसका और क्षय संभव नहीं है। जिसे अब और नहीं तोड़ा जा सकता। जिसका अब और विभाजन संभव नहीं है। और यदि कोई वस्तु आकाश हो जाती है तो ये अपने आप में वैसे ही अंतिम बात हो जाती

है कि अब आकाश से भी अधिक पीछे नहीं जाया जा सकता है। अब आकाश का तो और अधिक विभाजन संभव कैसे होगा? तो निश्चित ही पदार्थ की यह अवस्था अक्षय ही कहलायेगी।

मंत्र कह रहा है कि आत्मा अक्षर दृष्टि से ओमकार है। तो पहले यहां ओमकार का अर्थ भी समझ लेते हैं, फिर इस पूरे वाक्य का अर्थ एकसाथ समझेंगे। ओम में तीन अक्षर(अ, उ और म्) हैं। यदि हम इसकी ध्वनि पर ध्यान दें तो हम पाएंगे कि अ से इस ध्वनि का प्रारम्भ होता है, उ से ये छोटे या लम्बे काल तक स्थित रहती है और फिर म् से समाप्त हो जाती है। अर्थात ये आत्मा प्रारंभ, स्थिति और अंत के गुणों वाला है। यानिकि इससे जो कुछ भी प्रारम्भ होगा वो कुछ समय तक स्थित रहेगा और फिर उसका अंत हो जायेगा। इसी को यदि एक शब्द में कहना चाहें तो हम परिवर्तनशीलता कह सकते हैं। इसी कारण से संसार में परिवर्तनशीलता का गुण सर्वतः अनुभव में आता है। परिवर्तनशीलता माने कि सबकुछ उत्पन्न हो रहा है, कुछ समय स्थित रहता है और फिर अंत होकर किसी और का प्रारम्भ हो जाता है। सबकुछ ऐसे ही गोल गोल घूम रहा है, परिवर्तित हो रहा है। इसी गुण के कारण ही ये संसार उत्पन्न हो पा रहा है, स्थित रह पा रहा है और फिर प्रलय या अंत हो पा रहा है। इसी गुण के कारण विभिन्न प्रकार के पदार्थ उत्पन्न हो पाते हैं। विभिन्न प्रकार के जीव जन्तु और मनुष्य उत्पन्न हो पाते हैं। सारी विभिन्नता इस परिवर्तनशीलता के कारण उत्पन्न हो पा रही है, कुछ समय के लिए स्थित हो पा रही है और फिर अंत हो पा रही है।

आत्मा अक्षर दृष्टि से ओमकार है। ओमकार यानिकि परिवर्तनशीलता। जो कुछ भी पदार्थ उत्पन्न होगा वो किसी वृत्त में ही रहकर अपनी स्थिति बनाये रख सकेगा। यहां वृत्त का अर्थ है जैसे कि जल को लें तो जल की स्थिति बनी रहती है। पानी निरंतर वाष्प बन रहा है, वाष्प निरंतर बर्फ बन रही है और बर्फ निरंतर पानी बन रहा है। तो जल का ये एक वृत्त हो गया। इस वृत्त के कारण सदैव ही पानी भी बना रहता है, सदैव ही वाष्प भी बनी रहती है और सदैव ही बर्फ भी बनी रहती है। अर्थात जल के तीनों रूप निरंतर परिवर्तनशील भी रहते हैं और उनकी स्थिति भी बनी रहती है। अर्थात इसप्रकार इस संसार में सभी कुछ निरंतर परिवर्तनशील भी रहता है और बना भी रहता है जिस कारण से हम सब वस्तुओं का उपयोग भी कर लेते हैं। और उनकी परिवर्तनशीलता के गुण का विज्ञान जानकर अपने अनुसार वस्तुओं की उत्पत्ति, स्थिति और संहार की रचना भी कर लेते हैं और उनका उपयोग कर सुख को प्राप्त भी करते हैं। तो आत्मा अक्षय दृष्टि से ओमकार है अर्थात यदि आत्मा को

अक्षय की दृष्टि से समझा जाये तो ये ओमकार है। अक्षय दृष्टि का अर्थ हुआ कि यदि हम अव्यक्त अवस्था से देखें तो ये आत्मा ओमकार है अर्थात उदय स्थित और अंत वाला है। दूसरा ओमकार एक ध्वनि भी है। और हम सब जानते हैं कि ध्वनि, आकाश तत्व का विषय है। आत्मा ओमकार है यानिकि ये आकाश ही हमारा प्रथम होना है। और आकाश का अव्यक्त हो जाना ही हमारा भी अव्यक्त हो जाना है। अर्थात कारण आकाश या चेतन एक ही बात है। आत्मा आकाश है कहो या आत्मा ओमकार है कहो एक ही बात है। ओमकार और आकाश एक ही तत्व है। ध्वनि या शब्द आकाश की तनमात्रा ही है।

आत्मा की दो अवस्थाएं हो गई एक तो व्यक्त और दूसरी अव्यक्त। व्यक्त में भी दो अवस्थाएं है एक चेतन और दूसरी अचेतन। चेतन माने वो जोकि ईच्छा करने में समर्थ है और अचेतन माने वो जोकि ईच्छा नहीं कर सकता। अर्थात व्यक्त अवस्था में आत्मा चेतन और अचेतन दो प्रकार से अभिव्यक्त होता है। इसी व्यक्त अवस्था को द्वैत की अवस्था भी कहते हैं। और अव्यक्त अवस्था को अद्वैत की अवस्था भी कहते हैं। क्योंकि जब भी कुछ अभिव्यक्त होगा तो उसे किसी सीमा में ही अभिव्यक्त होना होगा। असीम की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं है। व्यक्त होने का अर्थ ही होता है कि वो किन्हीं गुणों से युक्त होगा। गुणों के होने से ही सीमा का निर्धारण हो जाता है। और सीमा का अर्थ ही है कि वह वस्तु इस काल से उस काल तक रहेगी। इसका जन्म और मरण होगा। ये वस्तु यहां से वहां तक होगी। इस प्रकार से हम देखेंगे कि अभिव्यक्ति द्वैत के बिना सम्भव ही नहीं होगी। इसीलिए व्यक्त अवस्था को द्वैत और अव्यक्त अवस्था को अद्वैत भी कह सकते हैं।

आगे मंत्र कह रहा है कि वह मात्राओं को विषय करके स्थित है। यहां वह से तात्पर्य है चेतन से और मात्रा से तात्पर्य है तीन अवस्थाओं से। वह चेतन ने इन मात्राओं को अपना विषय बनाकर उसमें स्थित रहता है। और मात्राएं तीन है अ उ और म्। अ से जाग्रत अवस्था, उ से स्वप्न अवस्था और म् से सुषुप्ति अवस्था। इसके बाद मंत्र कह रहा है कि पाद ही मात्रा है और मात्रा ही पाद है। अर्थात पाद माने चरण या अवस्थाएं। तो यहां मात्रा या पाद एक ही बात है ऐसा समझना चाहिए। इसे ऐसे समझ सकते हैं कि जैसे हम रेत पर अपनी उंगली से कुछ लिख देते हैं या कोई लाइन खींच देते हैं। अब यदि आप देखें तो वो लिखा हुआ या वो लाइन और रेत अलग अलग नहीं है। वो लिखा हुआ और रेत दोनों रेत ही है। या रेत ही उस तरह से कर दिया है कि हम वो लिखा हुआ अलग से देख रहे हैं। उसी प्रकार मात्रा और पाद है। मात्रा ही पाद की तरह अभिव्यक्त हो रही है जैसे रेत ही वो लिखा हुआ सा

होकर अभिव्यक्त हो रहा है। जैसे स्वर्ण को यदि हम कोई अंगूठी के आकार में ढाल दें तो तब हम उसे क्या कहेंगे कि ये स्वर्ण है या अंगूठी है। अब आकार के कारण उसे अंगूठी कह सकते हैं परंतु यदि कोई उसे स्वर्ण कहेगा तो भी सही ही होगा क्योंकि है तो वो स्वर्ण ही। तो जैसे यहां हम कहेंगे कि स्वर्ण ही अंगूठी और अंगूठी ही स्वर्ण है। या स्वर्ण ही उस आकार को धारण करके अब अंगूठी रूप से स्थित हो गया है, ये भी कह सकते हैं। तो तत्व वही है लेकिन वो तत्व जिन गुणों को धारण कर लेता है तो वो उस प्रकार से व्यक्त होने लगता है। इस प्रकार सबकुछ में जो हम विभिन्नता देख रहें हैं वो इन गुणों को धारण करने के कारण ही देख पा रहे हैं अन्यथा तो ये एक ही तत्व है जोकि इन विभिन्न गुणों को धारण करके अनेकता में व्यक्त हो रहा है। इस प्रकार एक ही अनेकता में अभिव्यक्त हो रहा है।

फिर मंत्र इन तीनों अवस्थाओं के नाम बता रहा है कि ये अकार, उकार और मकार हैं। पहले जाग्रत फिर स्वप्न और फिर सुषुप्ति। वो जो आत्मा पहले जाग्रत हुई फिर उसने इस संसार को कल्पित किया और फिर वो उस कल्पना को धारण करके, उस कल्पना के अनुसार क्रमशः इस संसार के रूप में रच गया या अभिव्यक्त हो गया। इसप्रकार से रचियेता ही रचना हो गया। सृष्टा ही सृष्टि हो गया। ब्रह्म ही ब्रह्माण्ड हो गया। वो ही ये हो गया। जिस प्रकार बीज ही वृक्ष हो जाता है। उसी प्रकार ये ओमकार या आत्मा ही ये संसार हो गया। ओमकार या ब्रहम या आत्मा ही बीज है संसाररूपी वृक्ष का और संसार ही वृक्ष है आत्मारूपी बीज का। जिस प्रकार बीज अपना बीजपना छोड़कर वृक्ष हो जाता है उसी प्रकार ब्रहम भी अपना आत्मापना छोड़कर संसार हो गया। अब ब्रहम, संसार रूप से ही स्थित है। लेकिन जिस प्रकार वृक्ष में पुनः अनेकों बीज आ जाते हैं उसी प्रकार संसार में भी अनेकों जीव जिनमें मनुष्य भी हैं, उत्पन्न हो जाते हैं। आगे की अभिव्यक्ति इन बीजों के आधार से ही होने लगती है। उसी प्रकार आगे की अभिव्यक्ति इन मनुष्यों के आधार से ही होगी। क्योंकि ये ही इस संसार की अंतिम अभिव्यक्ति है। संसार की आगे की अभिव्यक्ति अब पीछे के नियम और इसकी ईच्छा, इसके कर्म और इसके ज्ञान पर ही निर्भर करती है। अब ये ही चेतन के रूप में इस संसार का संचालन करेगा जोकि इसकी ईच्छा, कर्म और ज्ञान पर निर्भर करेगा। तो ये एक से अनेक होने की पूरी यात्रा है या अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार बीज में पूरा दिशानिर्देश निहित रहता है या कहें कि उसमें उद्देश्य निहित रहता है उसी प्रकार इस चेतन में भी उद्देश्य निहित रहता है जिसके अनुसार वो अभिव्यक्त होने का प्रयास करता रहता है। और वो है अपने ईच्छित सुखों की प्राप्ति का। अब आगे इस उपनिषद में इन अवस्थाओं के ज्ञान का परिणाम भी बताया गया है कि यदि इन अवस्थाओं का ज्ञान किया जाता है तो उनके

ज्ञान के कुछ परिणाम आयेंगे। क्योंकि कोई भी ज्ञान या कर्म कुछ परिणाम लाने के लिए ही होता है जोकि जीवन का उददेश्य भी होता है। नहीं तो पूरी प्रक्रिया को करने का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा। चेतन सदैव ही सुख पाना चाहता है जिसके लिए वो ज्ञान, कर्म और भोग की प्रक्रिया में संलग्न होता है। क्योंकि सुख पाने के ये ही माध्यम हैं चेतन के पास। तो चेतन इन अवस्थाओं के ज्ञान में सुख पाने की ईच्छा से ही प्रयासरत होता है।

अवस्थाओं के ज्ञान का परिणाम

अब आगे ये उपनिषद बतायेगा कि इन अवस्थाओं के ज्ञान का क्या परिणाम होता है समाज को। इससे हम समझ सकते हैं कि इस संसार में सब कुछ परिणामी है उसके कारण के अनुसार। प्रत्येक का कुछ ना कुछ उददेश्य होता है। कुछ ना कुछ परिणाम होता है। परंतु लोग समझते हैं कि आत्मज्ञान हुआ और बात समाप्त! जबकि वास्तव में तो ज्ञान के बाद वाला जीवन अब प्रारम्भ होता है। ज्ञान होने के बाद ही तो सही से ज्ञानानुसार कर्म होगा और सही से उसका ईच्छित फल आयेगा, और सही से उसका उपभोग होगा। अज्ञान की अवस्था वाला जीवन तो तुक्के वाला होता है। आपके किसी भी कर्म का परिणाम सुख या दुख कुछ भी आ सकता है। पता ही नहीं चलता कि क्या करने से क्या परिणाम आयेगा? कभी अच्छा करने से दुख वाला फल आता है और कभी गलत करने से सुख वाला फल आता है। यहां अच्छा या गलत कर्म उसे कह रहे हैं जिसे हमारे बुजुर्ग लोग हमें बताते हैं कि ये अच्छा है और ये गलत है। परंतु ज्ञान के बाद तो कर्म का ईच्छित परिणाम ही आता है। और हम सब ये चाहते भी हैं कि जिस परिणाम की अपेक्षा से हम कोई कर्म करते हैं, निश्चित रूप से वो ही फल या परिणाम आये। तो यदि इसप्रकार से समझें तो ईच्छित जीवन तो ज्ञान के बाद ही प्रारम्भ होता है। और इसीलिए तो मानव के जीवन में सबसे पहले ज्ञान के लिए ही विद्यालय बनाये जाते हैं। ताकि सभी युवा होने से पहले ज्ञान प्राप्त कर लें। क्योंकि कोई शिशु बिना ज्ञान प्राप्त किये युवा हो जाये और फिर वो कुछ भी सही गलत कर्म करेगा जिससे वो भी दुख को प्राप्त होगा और बाकि लोग भी विभिन्न प्रकार के दुखों को प्राप्त करेंगे जोकि हम में से कोई नहीं चाहते।

यदि हम प्रकृति का निरीक्षण करें तो पायेंगे कि प्रकृति में तो जैसा बीज होगा वैसा ही फल आता है। वातावरण का कुछ अंतर अवश्य होता है परंतु ऐसा नहीं होता कि आम का बीज बोया और अमरूद का वृक्ष उत्पन्न हो गया। आम का वृक्ष ही आयेगा। हां अलग अलग मिटटी में और वातावरण की विभिन्नता के कारण सभी स्थान पर आम के उन वृक्षों में कुछ कुछ अंतर होंगे परंतु सभी वृक्ष आम के ही होंगे। ये भी सत्य है कि बिना फल की चाह के कोई कर्म हम करते नहीं। और कर भी नहीं सकते। बिना ईच्छा या आवश्यकता के हमसे कोई कर्म का उदय होगा कैसे? सम्भव ही नहीं है। बिना ईच्छा या आवश्यकता के कोई कर्म करने की बात हमारे अंदर उत्पन्न ही क्यों होगी? कभी नहीं होगी। सुख की ईच्छा कभी हमारे अंदर से जाती नहीं चाहे लाख प्रयास हम कर लें। और बात भी सही है कि यदि संभव भी हो तो भी

बिना फल की ईच्छा के कर्म करने का औचित्य ही क्या होगा? एक अनावश्यक कर्म या कार्य को करने का औचित्य क्या होगा? ये तो ऐसा हो जायेगा कि जैसे बिना उद्देश्य के जीने लगे। उद्देश्य कहो या फल कहो, एक ही अर्थ है। जीवन का उद्देश्य सुख प्राप्त करना ही है और सुख ही तो चाहिए हमें फल के रूप में? यदि हमारे कर्म का फल सुख ना हो तो क्या औचित्य है कोई भी कर्म करने का? जीवन ही असफल है यदि सुख नहीं है जीवन में। फिर क्या औचित्य है हमारे लिए इतने बड़े ब्रह्मण्ड का? कोई औचित्य नहीं है। इतना बड़ा ब्रह्मण्ड और इसमें ईच्छा के अनुसार फल ना मिले तो क्या अर्थ इतनी बड़ी संरचना का? ये तो ऐसा हो जायेगा कि जैसे खोदो पहाड़ और परिणाम में निकले चुहिया भी नहीं। ये तो ऐसा लगेगा जैसे हमारे साथ धोखा हो गया। पर अज्ञान में ये सब होता है। और हम सब ये कहने को बाध्य होते हैं कि भाई बस कर्म करो और फल का चिंतन मत करो। हमारा केवल कर्म में अधिकार है, फल में नहीं। परंतु जिन बातों में ज्ञान है, उसमें देखें तो ज्ञात होता है कि नहीं, ऐसा नहीं है। कर्म करना एक निश्चित फल के लिए ही होता है। एक बच्चा भी बिना फल के कोई कार्य नहीं करता। और वैसे भी सोच समझ कर कर्म करने को इसलिए ही तो कहा जाता है क्योंकि हम ऐसा कोई कर्म ना करें जिससे कि उसका फल दुख देने वाला आये। इसका अर्थ कोई भी कर्म करने से पहले चिंतन मनन करना चाहिए कि हम जो कर्म करने जा रहे हैं उससे हमें क्या फल चाहिए। यदि फल का निश्चिय नहीं होगा तब तो सब तीर तुक्का ही हो जायेगा ना? माने जैसे हमें प्यास लगी है और हम लकड़ी को खाने लग जायें। कोई पूछे कि भाई लकड़ी क्यों खा रहे हो। तो हम कहने लगें कि भाई प्यास लगी है इसलिए लकड़ी खाने का कर्म कर रहा हूं जिससे हो सकता है कि प्यास बुझ जाये। तो ऐसी स्थिति में आप क्या कहेंगे कि भाई लगे रहो, कभी तो आपके कर्म का फल आपको मिल ही जायेगा, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में? पता नहीं कौनसा कर्म करने से आपकी प्यास बुझ जाये? आपकी केवल कर्म में स्वतंत्रता है, उसके फल में नहीं!

तो किसी भी कर्म को करने के पहले यदि उससे संबंधित ज्ञान हमें हो जाता है तो हमें ज्ञात रहता है कि क्या करने से कौनसे फल की प्राप्ति होगी। जल से प्यास बुझती है यदि ये ज्ञान हमारे पास है तो हम प्यास लगने पर सीधे जल को लेंगे और उसका पान कर अपनी प्यास उसी समय बुझायेंगे। अर्थात् एक ईच्छित फल की प्राप्ति होगी। एक ऐसे फल की प्राप्ति होगी जोकि हमने करने से पहले ही निश्चित किया था, कि प्यास बुझानी है।

और यदि मान लेते हैं कि मनुष्य को कर्म के फल का पता नहीं चलता कि किस कर्म का क्या फल आयेगा। तो इसका अर्थ तो ये होगा कि मनुष्य अपने किये हुए किसी भी कर्म के लिए जिम्मेवार नहीं होगा। फिर कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य से ये नहीं कह सकेगा कि भाई तुमने ईतना बुरा कर्म कैसे कर दिया। क्योंकि कर्म का अच्छा या गलत होना तो उसके फल पर निर्भर करता है। अच्छा फल आया तो अच्छा कर्म और यदि फल गलत आया तो गलत कर्म। अब मनुष्य बोलेगा कि भाई मेरा तो फल में अधिकार नहीं है। तो मैं कैसे उत्तरदायित्व ले सकता हूं कि मेरे किस कर्म से आपको सुख और दुख हुआ हो। और दूसरे मनुष्य का तो छोड़ो कोई मनुष्य अपने सुख दुख का या अपने किसी भी कर्म का उत्तरदायित्व नहीं ले सकेगा अपने लिए भी। केवल कर्म करना उसके हाथ में रह जायेगा जोकि वो कर देगा। अब परिणाम चाहे जो भी आये, अब सब भोगो उस परिणाम को। अंधेरगर्दी ही चलती रहेगी। और ये भी हमें ज्ञात नहीं होगा कि हमें जो परिणाम आ रहे हैं, वो किस कर्म के आ रहे हैं, अभी जो किया उसका या इसी जन्म में जो पहले किया था उसका या पिछले किसी जन्म में किया था उसका? आखिर अभी जो फल आया है वो किस कर्म का फल है और किसके कर्म का है? मेरे या किसी और के? या किसी कर्म का कोई फल आता भी है? कुछ भी ज्ञात नहीं होगा और कोई भी उत्तरदायी नहीं होगा। हम किसी अज्ञानी मनुष्य को उसके किसी भी कर्म के लिए उत्तरदायी ठहरा सकते हैं क्या? जैसे छोटे बच्चे कुछ भी कर्म कर देते हैं तो हम उन्हें अबोध होने के कारण उनके किये हुए किसी कर्म के लिए उन्हें उत्तरदायी नहीं समझते। और यदि हम मनुष्य को भी अबोध घोषित कर देंगे तो उसे भी उसके किसी कर्म का उत्तरदायी नहीं समझ सकेंगे। और फिर जैसा भी फल आ जाये बस बिना प्रश्न किये भोगने को बाध्य होंगे। मेरी समझ से कोई मनुष्य ऐसा संसार नहीं चाहेगा जहां हमें कर्म और उसके फल के बारे में पहले से ज्ञान ना हो। या ज्ञान करने का विकल्प ना हो।

कई लोग बोलते हैं शास्त्रों का नाम लेकर कि हमारा केवल कर्म में अधिकार है, उसके फल में नहीं। अब बताओ, जब हमारा फल में अधिकार ही नहीं तो कर्म किस लिए करेंगे? और शिक्षा किस लिए लेंगे? बुद्धिमान किस लिए बनेंगे? बुद्धिमान बनने का अर्थ ही क्या रह जायेगा? इतनी जो जीवन में हम उठापटक करते हैं, किस लिए करते है, यदि हमारा किसी फल में अधिकार ही नहीं है? और यदि ध्यान से देखें तो हमारा कर्म में भी अधिकार कहां है? क्या हम सबको वही करने को मिल रहा है जोकि हम करना चाहते हैं? कोई करना चाहता है अध्यापक का कर्म, पर उसको करना पड़ रहा है खेती का कर्म या कोई व्यापारिक कर्म और या कुछ और ही करना पड़ रहा है जोकि वो करना नहीं चाहता। यहां तक कि कभी तो चोरी या उससे भी

अधिक अपराधिक कर्म भी करने को बाध्य होना पड़ता है। और लोग शास्त्रों का नाम लेकर कह रहे हैं कि हमारा कर्म में अधिकार है। तो अवस्था तो ये हो रखी है कि ना तो कर्म में हमारा कोई अधिकार है और इसलिए ना उसके फल में कोई अधिकार दिखाई पड़ रहा है। ऐसा लग रहा है कि कोई अधिकार हमारे पास है ही नहीं। हां युद्ध का अधिकार है बस, प्रत्येक बात पर हम युद्ध जब चाहे तब कर सकते हैं। यदि हमको लग रहा है कि हम सामने वाले से बलवान हैं। ऐसी अवस्था हमारी हो रखी है। तो मैं ये कहना चाह रहा था कि सबकुछ फिर नये सिरे से समझने जैसा है। सभी ग्रंथों के अधिकतम हिस्से विरोधाभासों से भरे पड़े हैं। वो हमें ज्ञान देने के स्थान पर केवल और केवल भ्रम दे रहे हैं। इस समय इस संसार में 82 प्रतिशत धन पर केवल 1 प्रतिशत लोगों का अधिकार है। कर्म सारे लोग कर रहे हैं और फल केवल इन 1 प्रतिशत लोगों के पास ही जा रहा है। ये है हमारे ग्रंथों का सारा ज्ञान या सारा निचोड़, सारा परिणाम या सारांश अब तक का।

हम सब यहां आये हैं ईच्छापूर्वक जीवन जीने। हमें हमारी ईच्छानुसार ज्ञान मिले, कर्म मिले, भोग मिले और विश्राम मिले। जब हमारा जीवन हमारी ईच्छानुसार ज्ञानपूर्वक गति करता है तो इससे हमें सुख मिलता है, संतोष मिलता है जोकि हम सब चाहते हैं। तो जब हम सबका उद्देश्य एक ही है और यदि ये समझ में आ रहा है कि केवल और केवल साथ मिलकर ही इस उद्देश्य को पाया जा सकता है तो फिर क्यों ना सभी एकसाथ आकर इस उद्देश्य की प्राप्ति कर लें। हमें कौन रोक रहा है? कहीं हमारी वो ही संस्कृति तो हमें नहीं रोक रही, जिससे कि इतना लम्बा समय अपनाकर भी हम अभी तक अधिकतम सुखी ना हो सके? और ना ही हम दुखों से मुक्त हो सके। ये हमारी संस्कृतियां हमें फल का अधिकार तक नहीं देतीं। कर्म का अधिकार देते हैं। और वास्तव में तो कर्म का अधिकार भी नहीं देते। बस पुस्तकों या संविधानों में केवल लिख देते हैं कि कर्म में हमारा अधिकार है। अब बताईये ऐसे शास्त्रों या संस्कृतियों का या संविधानों क्या उपयोग है हमारे जीवन में? ऐसे जीवन दर्शन का क्या उपयोग है हमारे जीवन में? कुछ भी नहीं। आइये अब सही जीवन दर्शन का अध्ययन करते हैं।

तो आयें देखते हैं कि किस अवस्था के ज्ञान का क्या परिणाम आता है जीवन में।

नवां मंत्र

जागरितस्थानो वैश्वानरो अकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ।। 9 ।।

जिसका जाग्रत स्थान है। वह वैश्वानर व्याप्ति और आदिमत्व के कारण पहली मात्रा अकार है। जो उपासक इसप्रकार जानता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

प्रथम अवस्था के बारे में बताया जा रहा है इस मंत्र में। इस अवस्था का नाम जाग्रत स्थान कहा है और इसे प्रथम भी कहा है। प्रथम क्यों कहा है तो इस बारे में मंत्र कहता है आदिमत्व के कारण ये पहली अवस्था है। आओ इसे समझें कि इसका क्या अर्थ है। आदिम का अर्थ है प्रथम और तत्व तो हम जानते ही हैं अर्थात प्रथम तत्व यानिकि सबसे पहला पदार्थ जोकि चेतन था। आत्मा की अचेतन और दूसरी अवस्थायें भी है पर वो प्रथम नहीं है, वो इसके बाद की हैं। जैसे हमारी जगी हुई अवस्था प्रथम होगी और हमारी स्वप्न वाली अवस्था दूसरी होगी क्योंकि हम स्वप्न में तो तब जायेंगे ना जबकि हम होंगे। यदि हमारा होना ही ना हो तो स्वप्न में जायेगा कौन? और होने का अर्थ ही होता है चेतन होना। फिर ये अलग बात है कि हम स्वप्न में जाना चाहते हैं या होने में रहना चाहें या विश्राम अवस्था में, ना होना चाहते हैं। तो हमारे होने की अवस्था को प्रथम कहेंगे या आदि कहेंगे। तो ये जो जाग्रत अवस्था है संसार की, इसी को प्रथम अवस्था कहा क्योंकि यहां मनुष्य के रूप में जन्म से ही चेतन अवस्था प्राप्त रहती है। चेतन का अर्थ होता है जिसमें ईच्छा करने की, ज्ञान करने की, कर्म करने की, भोग करने की सामर्थ्य हो। जैसे कि मनुष्य में होती है। तो यहां आदिमत्व का ये ही अर्थ है। तो सृष्टि होने के बाद इस जाग्रत अवस्था से या स्थान से जीवन प्रारम्भ होता है इसलिए इसे प्रथम अवस्था कह सकते हैं। जीवन की दृष्टि से ये जाग्रत अवस्था ही महत्वपूर्ण है। हमारे जीवन का उद्देश्य इसी जाग्रत धरातल पर ही पूरा होता है। यदि हमारी ये अवस्था सुखी है तो बाकि अवस्थाएं भी सुखी होंगी, स्वस्थ होंगी। ये प्रथम अवस्था जैसी होगी तो बाकी अवस्थाओं का भी वही परिणाम होगा। जाग्रत अवस्था में यदि हम सुखी हैं तो हम बाकी अवस्थाओं में भी सुखी होंगे और यदि जाग्रत अवस्था में हम दुखी हैं तो बाकी अवस्थाओं में भी हम दुखी ही होंगे। इसलिए ये प्रथम अवस्था जिसे जाग्रत अवस्था भी कहते हैं सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। हमारा जीवन इसी जाग्रत अवस्था से प्रारम्भ होता है। इसीलिए ये अवस्था प्रथम होगी।

जो लोग या शास्त्र ऐसा कहते हैं कि स्वर्ग और नर्क कहीं किसी और स्थान पर होते हैं। इस सूत्र के आधार पर ये बात कुछ सत्य प्रतीत नहीं होती। इस सूत्र के अनुसार ये जाग्रत अवस्था ही प्रथम है, सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ ये हुआ कि ये अवस्था जैसी होगी तो बाकि सब वैसा ही होने वाला है। और हम देखते भी हैं कि यदि हमारी जाग्रत अवस्था संतोषजनक नहीं है तो हमारी बाकी अंदर की अवस्थाएं भी संतोषजनक नहीं रहती। वहां उतनी मात्रा में दुख होगा ही जितना कि हमें इस संसार में दुख है। और जैसे ही यहां इस संसार में हमारी कोई समस्या या दुख दूर होता है तो हमें अंदर भी बहुत शांति प्राप्त होती है, बहुत सुख प्राप्त होता है, हम स्वस्थ अनुभव करने लगते हैं। इस सबसे हम समझ सकते हैं कि हमारी अंदर की सारी अवस्थाएं इस जाग्रत अवस्था के परिणाम पर पूरी तरह से आश्रित हैं। इसीलिए इसको प्रथम कहा गया है। ये जैसी होंगी तो बाकी भी वैसी ही होंगी परिणाम में। तो सांस्कृतिक रूप से जाग्रत अवस्था ही प्रथम हो जायेगी।

इसप्रकार हम समझ सकते हैं कि ये अवस्था सारी आस्थाओं में प्रमुख है। मनुष्य के उत्पन्न होने के बाद यहां से संस्कृति प्रारम्भ होती है, यहां से एच्छिक जीवन प्रारम्भ होता है। क्योंकि मनुष्य के आने तक प्रकृति(आत्मा के द्वारा पहले से तय किया हुआ, सोचा समझा) जीवन ही संचालित रहता है। उदाहरण के लिए जैसे हम किसी कार के रूपाकार के बारे में सोचते हैं। तो इसे कहेंगे पहले से सोचा या कल्पित किया हुआ। और फिर उस कल्पना के अनुसार कार को बनाना। तो इसे कहेंगे के पहले से की हुई कल्पना के अनुसार कार को बनाना, अर्थात ये रूपाकार कार के लिए प्रकृति हो जायेगा। पहले से की हुई कृति या कल्पना के अनुसार बीज(आत्मा) वृक्ष(संसार) बनता है। तो प्रकृति पूरी होने के बाद अब संस्कृति का प्रारम्भ होता है जोकि यदि प्रकृति के अनुसार हो तो सही कहलायेगा, कोई प्रदूषण नहीं करेगा। नहीं तो विभिन्न प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न होंगे जिनसे फिर मनुष्यों और दूसरे जीवों को दुख और परेशानियां उत्पन्न होती हैं। तो संस्कृति कैसे प्रकृति के अनुसार हो, उसी के लिए प्रकृति का अध्ययन किया जाता है। ज्ञान विज्ञान प्राप्त किया जाता है। फिर उसके अनुसार संस्कृति का निर्माण किया और उसको अपनाया जाता है। संस्कृति का अर्थ होता है– मनुष्यों की जीवन व्यवस्था जोकि ऐसी हो जिससे कि हम प्रकृति का प्रयोग सबके सुखों को पाने के लिए इस प्रकार करें जिससे कि प्रकृति में कोई प्रदूषण ना हो, प्रकृति में सदैव ही साम्यावस्था बनी रहे। स्थूल प्रकृति का अध्ययन करना ही जाग्रत अवस्था को जानना कहा जायेगा। तो जाग्रत संसार ही हमारी जाग्रत अवस्था है। स्थूल प्रकृति का ज्ञान करके स्थूल संस्कृति का निर्माण किया जाता है। जोकि स्थूल प्रकृति के अनुसार ही होना चाहिए। जबतक प्रदूषण होता रहे और हमारी

कामनाएं पूरी ना हो रही हों तो समझना चाहिए कि अभी जागरित स्थान का पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ है। इस अवस्था को जानने की चेष्टा करते रहना चाहिए। और जैसे ही कोई नया ज्ञान खोजने में आये तो हमें अपनी संस्कृति को तुरंत उस ज्ञान के अनुसार परिवर्तन करना चाहिए। और ये प्रक्रिया तब तक करते रहना चाहिए जबतक कि हम सभी पूर्णरूप से सुखी नहीं हो जाते। जैसे ही हम सब पूर्णरूप से सुखी हो जायेंगे तो वह संस्कृति पूर्ण होगी, फिर उसमें और परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

मंत्र इसको ओम के अनुसार पहली मात्रा अ या अकार कह रहा है। कार का अर्थ कार्य होता है अर्थात अ का कार्य है ये जाग्रत अवस्था। यानिकि अ से ही इस अवस्था का निर्माण हुआ है। अ ही आधार है इस जाग्रत अवस्था का। आगे मंत्र कह रहा है कि जो इसप्रकार जानता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। अर्थात इसे जो भी जान लेगा वो ऐसे ज्ञान को प्राप्त होगा जिससे कि उसकी सम्पूर्ण कामनाएं पूर्ण हो जायेंगी। इसे इसप्रकार समझें कि जबतक अग्नि का आविष्कार मनुष्य ने नहीं किया था तो जो अंधेरे वाला जीवन था, अग्नि ना होने के कारण कई प्रकार की समस्याओं से भरा जीवन था। उससे सब मनुष्य दुखी थे और जब अग्नि का आविष्कार हो गया तो उससे जो जीवन में सुख आया वो हम सभी भली भांति जानते हैं। जब किसी ज्ञान की खोज हो जाती है तो उसका लाभ केवल वहीं मनुष्य नहीं पाता जिसने कि खोज की थी बल्कि सभी मनुष्य पाने लगते हैं जोकि उस खोज को अपनाते हैं। और ये सूत्र ये ही कह रहा है कि इस जाग्रत अवस्था के ज्ञान से सभी की संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण किया जा सकता है। और हम देख भी रहे हैं कि जैसे जैसे वैज्ञानिक और खोजी जिस जिस ज्ञान को प्राप्त करते जा रहे हैं वैसे वैसे ही हम लोग अधिक सुखी होते जा रहे हैं। हां जिसका ज्ञान अभी हमारे पास नहीं है, उसके कारण हम लोग अभी भी दुखी हैं। और तबतक रहेंगे जबतक कि हम उसका ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते। और इस सबमें व्यवस्था का बहुत महत्व रहता है। यदि व्यवस्था अच्छी होती है तो खोजें भी शीघ्रता से हो जाती है। और उनका लाभ लोगों तक शीघ्रता से पहुंचता है। क्योंकि सही दिशा में होती हैं। और यदि व्यवस्था सही नहीं होती है तो ना तो खोजें शीघ्रता से होती हैं और ना ही उनके लाभ लोगों तक शीघ्रता से पहुंचते है और दिशा से भटके भी रहते हैं। तो व्यवस्था एक मूल बात है जिसके अच्छा होने या गलत होने से हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अच्छा या गलत प्रभाव होता है। अच्छा प्रभाव सुख देता है और गलत प्रभाव दुख देता है। उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि प्रत्येक वर्ष में जब भी कृषक अपनी फसलें मंडी में लेकर आते हैं और उन्हें उनकी फसलों का कभी कभी तो ना के बराबर मुल्य मिलता है

जिससे क्रोधित होकर वे अपनी फसल को सड़कों पर फैंक जाते हैं और वो सब नष्ट हो जाता है और कृषक भी बहुत दुखी होता है। उसके घर में सब इस ईच्छा से प्रतीक्षा कर रहे होते हैं कि उनकी फसल का अच्छा मुल्य मिलेगा, जिससे उनके पिता अपनी पत्नी और बच्चों और अपने बुजुर्ग माता पिता के लिए कुछ सुख के साधन खरीद कर लायेंगे जिससे वे सब सुख प्राप्त करेंगे। परंतु जब पिता हताश निराश बिना धन के खाली हाथ घर में सर नीचा किये हुए आकर बैठ जाता है तो पूरा परिवार कैसा अनुभव करता होगा? सोच कर भी सर चकराने लगता है। परंतु वे तो उस दुख को जैसे तैसे सहन करते हैं। और कुछ तो सहन नहीं कर पाते और आत्महत्या तक कर लेते हैं। इस उदाहरण से हम समझ सकते हैं कि इसप्रकार की स्थितियां क्यों आती हैं। गलत व्यवस्था में इसीप्रकार का दुखी जीवन होता है। कृषकों को नहीं ज्ञात होता कि वे कौनसी फसल उत्पन्न करें, क्योंकि अभी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं हुई है जिससे कृषक ये जान पायें कि किस फसल की कितनी मांग है और कितने कृषक उस फसल को कितनी मात्रा में उत्पन्न कर रहे हैं। इस कारण से कभी कोई फसल अधिक उत्पन्न हो जाती है मांग से और कोई फसल कम उत्पन्न होती है मांग से। तो कभी कृषक परेशान होते हैं और कभी खरीददार परेशान होते हैं। क्योंकि वर्तमान व्यवस्था में मुल्य निर्धारण मांग और आपूर्ति के सिद्धांत के आधार से तय होता है। तो कभी कोई वस्तु बहुत महंगी हो जाती है और कभी कोई वस्तु बहुत सस्ती हो जाती है। महंगी वस्तु से उपभोक्ता परेशान होता है और सस्ती वस्तु से निर्माता परेशान होता है। इस कारण से पूरे संसार में कृषक अधिकतर गरीब ही मिलेंगे। और जिनके पास खेती भी नहीं है और कोई काम भी नहीं है उनकी स्थिति तो और भी खराब है। वो तो 2 रूपेय किलो चावल जोकि सरकार से उन्हें प्राप्त होता है उस को खाकर ही जैसे तैसे जीवित रह पाते हैं और फुटपाथ पर रहने को बाध्य होते हैं।

अभी तो जितनी भी संस्कृतियां इस संसार में हैं वे सब भाग्य भरोसे ही हैं। इसलिए सबके धर्म ग्रंथों में भाग्य की बड़ी बड़ी विवेचनाएं लिखी हुई हैं। और अधिकतम में तो पिछले हजारों जन्म के भाग्य भरे पड़े हुए हैं जोकि हम सबके जीवन को नर्क बनाये हुए हैं। जैसे भाग्य नहीं बल्कि दुर्भाग्य हों हमारे। अधिकतम लोग तो दुखी हैं, केवल थोड़े से लोग ही कुछ मायने में सुखी हो पाते हैं। जैसे हम लोग कोई दुर्भाग्य का अक्षय भंडार भर कर आये हों अपने पीछे जोकि समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रहा है। जैसे कि जन्म लेकर ही कोई अपराध कर दिया हो। जैसे ये संसार बनाकर ही किसी भगवान ने कोई अपराध किया हो। जैसे ये संसार ना हो कोई कैदखाना हो अपराधियों का जोकि किसी ईश्वर ने बनाया हो। लेकिन ऐसा क्यों है, यदि किसी से

पूछो तो सभी धर्मों के जानने वाले अतार्किक बाते करने लगते हैं और यहां तक कह देते हैं कि मनुष्य ज्ञात ही नहीं कर सकता कि ये सब क्या है, क्यों है? अब बताईये जब वे पता ही नहीं कर सकते तो ऐसे सिद्धांत बनाते ही क्यों हैं जिनके बारे में उन्हें सही से कुछ भी ज्ञात नहीं? ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे सारे धर्म ग्रंथ भाग्य से नहीं बल्कि दुर्भाग्य से भरे पड़े हैं।

जबकि सही संस्कृति भाग्य पर आधारित नहीं होगी। उसमें भाग्य जैसा कोई तत्व नहीं होगा जोकि हम सबके सुख दुख को तय करेगा। बल्कि एक ज्ञानपूर्वक व्यवस्था होगी जिसमें हमारे सारे सुख चाहे वो ज्ञान का सुख हो, चाहे वो कर्म का सुख हो, चाहे वो भोगों का सुख हो और चाहे विश्राम का सुख हो वो सब निश्चित होंगे। जोकि ईच्छा होने पर हमें प्राप्त होते रहेंगे। जब मैंने खोज की तो भाग्य और अज्ञान मुझे तो समानार्थी ही लगे। अज्ञानजनित कर्मों का फल ही निश्चित नहीं होता कि सुख प्राप्त होगा कि दुख। जब दुख आ जाता है तो हम कहने लगते हैं कि हमारे भाग्य में ऐसा ही था। इसका अर्थ हमें कर्म करने से पहले नहीं पता था कि इस कर्म का क्या परिणाम आयेगा। यानिकि कुछ भी आ सकता है। तो अज्ञानता के कारण ही हमें भाग्य जैसा प्रतीत होता है। ज्ञान हो जाने पर वही भाग्य हमें निश्चितरूप से ज्ञात हो जाता है। हमें पता होता है कि क्या करने से कौनसा फल आयेगा और कब आयेगा। उदाहरण के लिए यदि मैं आपको कोई ऐसा बीज दूं जिसके बारे में आपको ज्ञात नहीं कि ये किसका बीज है लेकिन मुझे पता है कि ये किसका बीज है। अब आप भी उस बीज को बोयेंगे और मैं भी बोउंगा। मुझे निश्चित रूप से ज्ञात होगा कि उस बीज से आम के फल आने वाले हैं। लेकिन आप भाग्य के सहारे रहेंगे कि पता नहीं कौनसे फल आ जायें। तो ये अंतर होता है ज्ञान और अज्ञान का। ज्ञान में फल निश्चित होते हैं और अज्ञान में भाग्य होता है। तो जो भी मनुष्य भाग्य की बात करता दिखें तो समझ जाना चाहिए कि वो उस बारे में अज्ञानी है। उसे उस बारे में कोई ज्ञान प्राप्त नहीं है। जैसे कोई वैद्य ये कहे कि ये दवाई खा लो हो सकता है कि स्वस्थ हो जाओ, तो हमें समझ जाना चाहिए कि ये कोई झोला छाप वैद्य है जिसे आर्युवेद का निश्चित ज्ञान नहीं है। नहीं तो वो निश्चितरूप से कहेगा कि चिंता ना करो आप ये दवाई लेने के बाद स्वस्थ हो ही जाओगे। तो अज्ञान कहो या भाग्य कहो एक ही बात है।

आगे सूत्र कह रहा है कि इस अवस्था के ज्ञान से सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। अब इसका क्या अर्थ है? सभी कामनाएं तो तभी प्राप्त हो सकती हैं ना जबकि पूर्णरूप से सही व्यवस्था हो। नहीं तो हम सुनते भी हैं कि राजाओं को भी सम्पूर्ण

कामनाएं प्राप्त नहीं होती हैं। और इस समय भी देखें तो अमीर लोगों को भी सम्पूर्ण कामनाएं प्राप्त नहीं हो रहीं। जबकि उनके पास धन की तो कमी होती नहीं है। इस सब बातों पर यदि हम ध्यान से चिंतन करेंगे तो ज्ञात होगा कि केवल और केवल पूर्ण व्यवस्था ही सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करा सकती है और जब पूर्ण व्यवस्था होगी तब तो सबकी सम्पूर्ण कामनाएं प्राप्त हो ही जायेंगी। किसी एक मनुष्य की ही थोड़े पूरी होंगी? उस व्यवस्था में जितने भी मनुष्य आते होंगे उन सबकी सम्पूर्ण कामनाएं प्राप्त हो जायेंगी।

और ये जो लोग कहते हैं कि ईच्छाएं तो अनंत होती हैं, वे भी आसानी से समझ सकते हैं कि यदि ईच्छाएं अनंत होती तो वे कभी पूर्ण नहीं होतीं। इस संसार में जिसका भी प्रारम्भ है उसका अंत भी है। यहां कुछ भी अनंत नहीं है। जब मनुष्य ही आदि अंत वाला है तो उसकी ईच्छाएं कैसे अनंत हो सकती हैं। धर्म ग्रंथ कह रहे हैं कि प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और मनुष्य की ईच्छाएं अनंत हैं! बताईये कि जिस संसार का कोई ओर छोर नहीं ज्ञात होता वो इन्हें सीमित संसाधनों वाला दिखाई देता है। और जो मनुष्य आदि अंत वाला है उसकी ईच्छाएं अनंत दिखाई देती हैं!! धर्म ग्रंथों का ऐसा निर्णय मुझे समझ नहीं आया। और इन धर्म ग्रंथों को जानने वाले लोगों से पूछो तो कहते हैं कि मान लो, ये जानने का नहीं श्रद्धा का विषय है। भाई यदि श्रद्धा का विषय है तो फिर इस बात पर श्रद्धा क्यों नहीं लाते कि प्राकृतिक संसाधन अनंत हैं और मनुष्य की ईच्छाएं तो थोड़ी सी ही हैं। और आश्चर्य की बात है कि आज का अर्थशास्त्र भी इसी सिद्धांत पर बना है कि मनुष्य की ईच्छाएं अनंत हैं और संसाधन सीमित हैं! तो फिर ऐसी समझ का ये परिणाम तो आना ही था कि अधिकांश मनुष्यों को उनके सुख नहीं मिलेंगे। फिर ये धर्म ऐसा क्यों समझा रहे हैं कि ये तुम्हारे पूर्व जन्मों के पापकर्म हैं!! ये क्यों नहीं बता रहे कि भाई परमात्मा ने ही प्राकृतिक संसाधन कम बनाये हैं। बड़ा छोटा सा संसार बनाया है। बस कुछ किलोमीटर लम्बा चौड़ा। परमात्मा बड़ा गरीब है। सबके लिए सबकुछ नहीं बना सकता। फिर क्यों वो लोगों को कह रहे हैं कि पूजा पाठ करो तो आपकी कामनाएं पूरी हो जायेंगी? एक तरफ तो कहते हैं कि परमात्मा की महान रचना ये संसार और दूसरी तरफ कहते हैं कि मनुष्य की ईच्छाओं की पूर्ति भी नहीं कर सकता। घोर आश्चर्य है ऐसी मान्यताओं पर!! इन सभी मान्यताओं पर हमें गहन विचार विमर्श करना चाहिए। मेरी खोज के अनुसार कोई भी मान्यता चाहे वो सही हो या गलत, हमारे जीवन को आधारभूत ढंग से प्रभावित करती हैं। यदि मान्यता सही नहीं हुइ तो वो दुखदायी ही होगी, ये भी निश्चित ही है।

और यहां में जब ज्ञान की बात कर रहा हूं तो वो समाज के स्तर से कर रहा हूं नाकि व्यक्तिगत स्तर से। इसका अर्थ ये नहीं है कि जो कोई एक आदमी ज्ञानी होगा, वो तो सुखी हो जायेगा और दूसरे जोकि ज्ञानी नहीं होंगे तो वे दुख को प्राप्त करेंगे। ये बात सही है कि ज्ञान और विज्ञान व्यक्तिगत स्तर से ही खोजे जाते हैं, परंतु खोजे जाने के बाद वो समाज की धरोहर बन जाते हैं। किसी भी ज्ञान और विज्ञान से सारा समाज ही सुखी होता है नाकि केवल उसे खोजने वाला। ये बात मौजूदा व्यवस्था पर निर्भर होती है कि किसी ज्ञान की खोज होने के बाद उसका सुख सबतक कब पहुंचता है या कितने लोगों तक पहुंचता है। तो ये उपनिषद भी केवल कोई व्यक्तिगत स्तर के लाभ की बात नहीं कर रहा बल्कि पूरे समाज के स्तर की बात भी कर रहा हैं। ये आत्मा की बात कर रहा है। और कह रहा है पहले ही श्लोक में कि ये जो कुछ भी है वो सब आत्मा ही है। तो ये सबकी बात कर रहा है। ये उपनिषद बहुत ही छोटे में अपनी बात कह रहा है। फार्मूला फार्मेट में ये अपनी बात कह रहा है। या सूत्ररूप में ये बात कह रहा है। इसे बहुत ही सावधानी से समझने का प्रयास करना चाहिए। जब ये कह रहा हैं कि जोभी कोई इस जाग्रत अवस्था को जान लेगा तो उसकी सभी ईच्छाएं पूर्ण हो जायेंगी, तो इसका तात्पर्य हमें लेना चाहिए कि उस एक व्यक्ति के खोजे गये ज्ञान से पूरा समाज लाभान्वित होगा नाकि हर आदमी अपने लिए एक ही ज्ञान को बार बार खोजेगा। जैसाकि हम सभी अनुभव भी कर रहे हैं कि हमारे वैज्ञानिकों ने अभीतक जो भी ज्ञान विज्ञान खोजा है तो उसका लाभ पूरा मानव समाज और बल्कि पूरी समष्टि को भी मिलता है। उदाहरण के लिए बहुत सारी चिकित्साएं, कृषि की खोजें, दूरदर्शन, मोबाइल, आटोमोबाइल, बहुत सारी मशीनरी, बहुत प्रकार के भोजन, बहुत प्रकार के कपड़े, कमप्यूटर, घड़ी आदि हजारों खोजे हैं। ये सभी खोजें थोडें से लोगों के द्वारा हुई हैं परंतु लाभ सभी ले रहे हैं। इसी प्रकार आगे भी और खोजें होती रहेंगी और उनका लाभ सभी को मिलेगा। यदि इन खोजों में समाज का भी भरपूर साथ मिले तो ये और भी शीघ्रता से होंगी। इससे हम अभीतक ये भी समझ गये होंगे कि अभी आधिभौतिक विज्ञान की खोज भी अपने आप में पूर्ण नहीं हुई है। अर्थात अभी जाग्रतावस्था का ज्ञान पूणरूप से अभीतक नहीं हो पाया है। अभी वैज्ञानिक लोग उसमें लगे ही हुए है। लेकिन यदि हम सभी इतना भी समझ गये कि ये जाग्रतावस्था ही प्रथम एवं मुख्य अवस्था है तो हम बहुत सारी कपोल काल्पनिक स्वर्ग, नरक, मोक्ष, निर्वाण, पुर्नजन्म, भूत प्रेत आदि की बातों से बच सकते हैं और अपना समय सही और सार्थक दिशा में लगाकर जल्दी ही अधिकम सुखी हो सकते हैं।

इस सूत्र के अनुसार सभी की मनोकामनाएं पूर्ण हो सकती हैं। इसका एक अर्थ और भी है, उसे भी हमें बड़े ही ध्यान से समझना चाहिए क्योंकि ये बहुत ही महत्वपूर्ण अर्थ है बल्कि सारे अर्थों का प्रारम्भ है। अभी तक के अधिकतम दर्शन, अधिकतम आध्यात्मिक गुरू हमें ये कहते आ रहे हैं कि कामनाओं को ना करों, ये बन्धन का कारण हैं, कामनाएं आपको मुक्त नहीं होने देंगी, भोगी ना बनो, आपकी आध्यात्मिक यात्रा आगे नहीं बढ़ेगी, कामनाएं ही सारे दुखों का कारण है, मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी आदि आदि। इस प्रकार की बातें करते आ रहे हैं। कोई परीक्षा देने के लिए आपका जन्म यहां हुआ है, इसके अलावा आप यहां कोई मनोकामाना नहीं करनी चाहिए नहीं तो ये कुफ्र माना जायेगा अर्थात् अल्लाह की नजर में ये अपराध होगा, ये कुरान के मानने वाले कहते हैं। कुलमिलाकर देखें तो लगभग सारे गुरू, सारे दर्शन मनोकामनाएं या ईच्छाएं करने के थोड़ा या अधिक या पूर्णरूप से विरोध में हैं। माण्डुक्य उपनिषद के इस सूत्र से हम समझ सकते हैं कि ईच्छाएं ही मुख्य हैं इस जाग्रत अवस्था में। यदि जाग्रत अवस्था से ईच्छाएं निकाल दी जायें तो कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा चेतन होने का। आप थोड़ा सा सोचकर देखिए कि यदि आपके अंदर से ईच्छा या कामना करने का अधिकार आप से ले लिया जाये तो आपके जीने का कोई औचित्य रहेगा क्या? क्या आप ऐसे जीवन का कोई अर्थ अनुभव कर पायेंगे? क्या वो जीवन दासता से कुछ भी अलग होगा क्या? जहां ईच्छा करने वाला कोई और होगा और आपको केवल और केवल किसी के आदेशानुसार जीवन को जीना होगा, ऐसे जीवन से आपको दासता के अलावा क्या और अनुभव होगा या हो सकता है? और यदि सभी चेतन के अंदर से ये ईच्छा करने का अधिकार हट जाये तो क्या कुछ भी प्रारम्भ हो सकेगा? क्या बिना ईच्छा के कोई भी गति संभव है कहीं पर भी? क्योंकि जब कोई एक चेतन ईच्छा करता है आदेश के रूप में दूसरे चेतन को, यदि दूसरा इसे स्वीकार ना करे या अपने आपको बाध्य ना समझे तो क्या पहले चेतन की ईच्छा किसी भी कार्यरूप में परिवर्तित होगी या कोई ईच्छापूर्ति की दिशा में कोई गति हो पायेगी? इसका अर्थ बिना ईच्छा के कोई भी गति सम्भव नहीं है किसी भी चेतन में। और फिर कोई जीवन भी संभव नहीं है। अर्थात् बिना ईच्छा कोई जीवन संभव ही नहीं है। बिना ईच्छा के किसी चेतनता का कोई अर्थ ही नहीं है। चेतन कहो, ईच्छा कहो, जीवन कहो, दिशा कहो, उद्देश्य कहो ये सब एक जैसी ही बातें हैं।

और इन धर्म के ग्रंथों को देने वालों ने क्या बिना ईच्छा के ही ये ग्रंथ लिख दिये या बोल दिये? इन धर्म ग्रंथों के गुरू लोग भी इतने उपदेश किये जाते हैं, क्या ये सब वो बिना किसी ईच्छा के ही किये जाते हैं? वो जो भोजन आदि करते हैं क्या बिना ईच्छा के किये जाते हैं? विभिन्न स्थानों पर भ्रमण किये जाते हैं, क्या ये सब वो बिना ईच्छा

के ही किये जाते हैं? इन सबका जीवन हर कदम पर विरोधाभासों से भरा हुआ है। इनसे पूछों तो कहते हैं कि इनकी बुद्धि के परे है। अर्थात् ये केवल इन ग्रंथों का पालन करने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन ये सब इनकी समझ से परे है। या दूसरे शब्दों में कहें तो ये लोग बिना जाने ही अज्ञानता में इन ग्रंथों का पालन करने और कराने का प्रयास कर रहे हैं। और आश्चर्य की बात है कि ये इसे बुद्धि के परे भी बोलते हैं और इसे ज्ञान भी कहते हैं और अपने आपको ज्ञानी भी। जबकि विभिन्न विरोधाभासों से इनका जीवन भरा हुआ है। तो हम सबको फिर से चिंतन मनन करने की जरूरत है और तबतक जरूरत रहेगी जबतक की ये बात बुद्धि के परे से उरे नहीं हो जाती, अर्थात् हमारा ज्ञान नहीं बन जाती।

अबतक की बातों से निष्कर्ष ये निकला कि मनोकामनाएं बंधन का कारण नहीं बल्कि जीवन का कारण हैं, जीवन का अर्थ हैं, चेतन होने का पर्याय है। तो हमें अपने जीवन दर्शनों को सही करने की आवश्यकता है। और बहुत खोजों के बाद मैं वही करने का प्रयास कर रहा हूं। आपमें से जिनको मेरा ये प्रयास सही लगे वो इसमें मेरी सहायता करें ताकि हमेंशा के लिए सही जीवन दर्शन की स्थापना हो सके। और हम सभी एवं आने वाले सभी चेतन या जीव भी सदा सुखी रहें। जोकि जीवन का लक्ष्य ही है। और जिनको भी इस बात से सहमति ना हो वे भी मुझे समझाने का पूरा प्रयास करें ताकि मैं भी इस कार्य में अपना समय नष्ट ना करूं। अर्थात् मुझे ज्ञानी बनाने का प्रयास करें। इसमें या तो मैं आपका ज्ञान समझ लूंगा या आप इस ज्ञान को समझ सकोगे। कुलमिलाकर सभी का या बहुमत का एकमत होना चाहिए ताकि सभी एक ही दिशा में गति कर सकें और जो भी लक्ष्य हो उसे प्राप्त कर सकें।

दसवां मंत्र

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ।।10।।

स्वप्न जिसका स्थान है, वह तैजस उत्कर्ष तथा मध्यवर्तित्व के कारण द्वितीय मात्रा उकार है। जो उपासक ऐसा जानता है, ज्ञान संतान का उत्कर्ष करता है, सबके प्रति समान होता है और उसके कुल में कोई ब्रहमज्ञान हीन नहीं होता।

इस मंत्र में दूसरी अवस्था के बारे में बताया जा रहा है जोकि हमारी स्वप्न अवस्था है। स्वप्न जिसका स्थान है वह तैजस उत्कर्ष तथा मध्यवर्तित्व के कारण द्वितीय मात्रा उकार है। मंत्र कह रहा है कि ये तैजस है। पहले इस तैजस को समझते हैं। तैजस माने प्रकाश जोकि जब एक स्थान पर अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाता है तो हमें रूपाकार में दिखाई देने लगता है, इसी को तेज नाम से भी हम जानते हैं। तैजस का अर्थ हुआ कि स्वप्न अवस्था में हम जो भी सब अनुभव करते हैं वो तेज के रूप में ही होता है अर्थात ज्ञान रूप में होता है। तेज का एक अर्थ ज्ञान भी होता है। और तेज के अनुभवकर्ता को तैजस नाम से जाना जाता है। जिस प्रकार जाग्रत स्थान में वस्तुएं स्थूल पंच महाभूतों की बनी होती हैं वैसे ही स्वप्न स्थान में वस्तुएं सुक्ष्म पंच महाभूतों से बनी होती हैं। तो ये जो सुक्ष्म रूप है इसी को तेजस के नाम से जाना जाता है। जैसे स्वप्न में किये हुए भोजन से सारे स्वाद आदि का अनुभव तो होता है परंतु स्थूल शरीर में उससे पुष्टि नहीं होती है। यदि हम जाग्रत स्थान में स्थूल भोजन करते हैं तो उसमें स्वाद आदि के साथ स्थूल शरीर की पुष्टि भी होती है। तो इस अंतर से हम समझ सकते हैं कि सुक्ष्म और स्थूल में क्या अंतर होता है यहां। अनुभव दोनों में होते हैं लेकिन पुष्टि केवल जाग्रत स्थान के भोजन में होती है। हां कुछ विषयों में कोई अंतर नहीं होता जैसे कि नृत्य हम स्वप्न में देखें या कि जाग्रत में देखें एक ही बात होती है। क्योंकि कोई स्थूल पदार्थ हमारे शरीर के अंदर नहीं जाता है भोजन के जैसा। इसी से हम ये भी समझ सकते हैं कि ये स्वप्न स्थान ज्ञान का स्थान है। इस स्थान में केवल ज्ञान ही होता है हमें, जोकि सुक्ष्म का विषय है। कोई स्थूल पुष्टि नहीं होती स्थूल शरीर में। इसका अर्थ, जब जाग्रत स्थान में भी हम कोई ज्ञान करते हैं तो इसी स्वप्न स्थान का ही उपयोग कर रहे होते हैं। अब जैसे नृत्य हम स्वयं करें तो जाग्रत और स्वप्न में किये गये नृत्य के परिणामों में अंतर आ जायेगा। और अंतर ये होगा कि स्वप्न में किये गये नृत्य में हमारा स्थूल शरीर उसमें कोई हिस्सा नहीं लेगा। तो इससे हमारे स्थूल शरीर में वो परिणाम नहीं आयेंगे जोकि यदि हम स्थूल शरीर से

नृत्य करते, तब आते। कुछ तात्कालिक अंतर आयेंगे लेकिन वो कोई विशेष परिणामी नहीं होंगे। जैसेकि हमारी कुछ धड़कन बढ़ जायेगी, स्वांस की गति बढ़ जायेगी आदि पर ये वैसा नहीं होगा जैसाकि जाग्रत में स्थूल शरीर से नृत्य करने पर शरीर में सोष्ठवता, स्वस्थता, लयबद्धता आती है। इसप्रकार हम जाग्रत और स्वप्न अवस्था में क्या संबंध है और क्या अंतर है को समझ सकते हैं। दोनों अवस्थाओं के अपने अपने कार्य हैं और दोनों अवस्थाएं एक दूसरे को अपने अपने ढंग से प्रभावित करती हैं। तैजस के क्या कार्य या उपयोग हैं, हम लोग समझने का प्रयास करेंगे।

मंत्र आगे कह रहा है कि तैजस उत्कर्ष तथा मध्यवर्तित्व के कारण द्वितीय मात्रा उकार है। यहां हम उत्कर्ष का अभिप्राय समझने का प्रयास करते हैं। उत्कर्ष का अर्थ उन्नति होता है। अर्थात जाग्रत स्थान में जन्म के समय हमें ज्ञान की स्तिथि शून्य या न्यूनतम होती है, तो अब यहां से ज्ञान का उत्कर्ष होगा या ज्ञान में उन्नति या वृद्धि होगी। एक अनुभव हम सबका ही होगा कि जब हमारे ज्ञान में उन्नति या उत्कर्ष होता है तो उससे हमारे जाग्रत स्थान की समृद्धि में भी उत्कर्ष होता है। यदि हम ज्ञान में कमजोर होते हैं तो हम निर्धन होते हैं और यदि हमारा ज्ञान अधिक होता है तो हम समृद्ध होते जाते हैं। ज्ञान के अभाव में सारे संसाधन होने के उपरांत भी हम उससे अपना सुख प्राप्त नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए जबतक अग्नि का ज्ञान मनुष्य को नहीं हुआ था तो ऐसा तो था नहीं कि तब अग्नि संसाधन के रूप में नहीं थी। अग्नि तो थी परंतु उसका ज्ञान ना होने के कारण मनुष्य उसका उपयोग करके सुखी नहीं हो पा रहा था। जब अग्नि का ज्ञान हुआ तो तबसे मनुष्य ने उसका उपयोग करके सुखी होना प्रारम्भ किया। हमारे सुख में वृद्धि होने लगी और आजतक हो रही है। ये भी हम सब जानते ही हैं कि हमें सारा ज्ञान अंतःकरण के कारण ही हो पाता है। अंतःकरण चतुष्टय में से दो करण मन और बुद्धि का स्थान ये स्वप्न अवस्था ही है। चित्त और अहंकार सुषुप्ति अवस्था में रहते हैं। और चतुर्थ अवस्था में तो सबकुछ अव्यक्त ही हो जाता है। चतुर्थ में तो कुछ भी व्यक्त अवस्था में नहीं रहता। अहंकार, मन के द्वारा किसी विषय पर चिंतन मनन करता है और चिंतन मनन के पश्चात बुद्धि के द्वारा किसी ना किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है। और इस निष्कर्ष को चित्त में ग्रहण करके रखता है। फिर इन निष्कर्षों को समय समय पर आवश्यक होने पर जीवन में उनका उपयोग करता है।

आगे मंत्र कह रहा है कि जो ऐसा जानता है वो ज्ञान संतति का उत्कर्ष करता है। यहां ज्ञान संतति से अर्थ है कि ज्ञान की संतान अर्थात एक ज्ञान दूसरे ज्ञान को पैदा करता है, इस भाव में ज्ञान संतति है। यानिकि एक ज्ञान के बाद दूसरा और फिर

तीसरा और इसी प्रकार ज्ञान को हम आगे बढ़ाते जाते हैं अपनी रूचि और आवश्यकता के अनुसार। अर्थात जो मनुष्य जीवन में ज्ञान की महिमा को जान जाता है तो वो ऐसी व्यवस्था करता है जिससे ज्ञान की परंपरा चलती रहे। तो वो विद्यालयों की स्थापना करता है जिससे ज्ञान एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में जाता रहता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाता रहता है, एक संतति से दूसरी संतति में जाते रहता है और बढ़ता भी रहता है। अनुसंधान की व्यवस्था करता है। जैसाकि हम सब जानते ही हैं। ऐसा क्यों करते हैं क्योंकि हम जानते हैं कि ज्ञान ही सुख की कुंजी है। और अज्ञान ही दुख का कारण है। तो जो मनुष्य ऐसा जानता है वो ज्ञान की व्यवस्था करता है इस जाग्रत स्थान में, समाज में। ये हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि जाग्रत स्थान ही मुख्य स्थान है, हम जो कुछ भी करते हैं, इसमें जाग्रत स्थान की मुख्यता बनी रहती है। ये जाग्रत स्थान ही सामूहिक स्थान है, इसके अलावा बाकि जितने भी स्थान हैं वो सब व्यक्तिगत हैं। यदि आपके पास कोई ज्ञान है और आप इसको जाग्रत स्थान में किसी को प्रदान नहीं करते तो ये आपके मृत होने पर खो जायेगा। यदि आप अपने ज्ञान को जाग्रत स्थान में किसी को प्रदान कर देते हैं या कोई पुस्तक लिख देते हैं तो वो इस जाग्रत स्थान में बना रहता है। और सभी उसका लाभ लेते रहते हैं। क्योंकि सारे सुख हमें इस जाग्रत स्थान में चाहिए होते हैं। यदि इस जाग्रत स्थान में हम सम्पूर्ण सुख की स्तिथि में होते हैं तो ही हम हमारे स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में भी सुख का अनुभव करते हैं। तो जाग्रत स्थान का महत्व इस दृष्टि से सबसे अधिक है, इसे हमें ध्यान रखना चाहिए। इसलिए जिसके पास जो भी ज्ञान हो तो उसे इस जाग्रत स्थान में प्रदान कर देना चाहिए। छुपाकर नहीं रखना चाहिए। किसी भी ज्ञान को छुपाकर रखना अपराध के जैसा ही है। वो मनुष्य अपने साथ साथ बाकि भी सभी को उस ज्ञान से पैदा होने वाले सुख से वंचित कर रहा है।

आगे मंत्र कह रहा है कि वह मनुष्य जोकि इस स्वप्नावस्था को जानता है वो सबके प्रति समान हो जाता है। वो सबके प्रति समान इसलिए हो जाता है क्योंकि वो ये जान जाता है कि एक ही अनेक हुआ है और सबका उददेश्य भी समान ही है। सबके सामूहिक सहयोग के बिना हम सब सुखी नहीं हो सकते, तो सभी का समान अधिकार है। और वो ये भी जान जाता है कि यदि वो सबके साथ समानता का व्यवहार नहीं करेगा तो इससे समाज में दुख की उत्पत्ति ही होगी। और उस दुख का कम या अधिक हिस्सा उसके जीवन में या उसके अपनों के जीवन में कभी भी आ सकता है, जोकि कोई ज्ञानी नहीं चाहेगा। इस कारण से वो सभी के प्रति समान भाव से भर जाता है। उदाहरण के लिए रथ में जितना महत्व चक्के का होता है उतना ही महत्व

चक्के को रोकने वाली छोटी सी कील का भी होता है। अर्थ ये हुआ कि कोई भी मनुष्य चाहे कोई भी योग्यता क्यों ना रखता हो या वो कोई भी सहयोग क्यों ना देता हो समाज में, उसे समान महत्व का ही समझना चाहिए एंव उसका समान अधिकार ही व्यवहार में होना चाहिए। और समान ही होगा तो ही अधिकतम सुख की संभावना है। यदि समाज में जितनी मात्रा में अधिकारों की असमानता होगी, तो उतनी मात्रा में दुख अवश्य रहेगा। उससे बचा नहीं जा सकता। इस ज्ञान के कारण वो मनुष्य सबको समान मान से ही देखता है क्योंकि सबकी तरह वो भी अधिकतम सुखी होना चाहता है और सुखी होने का उपाय यही है कि सबको समान मान मिले इस जाग्रत स्थान में। इसको और गहराई से समझने के लिए मेरी पहली पुस्तक **'सम्पूर्ण समाधान'** को अवश्य पढ़िये।

इस समानता के बारे में चिंतन करते हैं। समानता माने सबका समान मान इस जाग्रत स्थान में, क्यों ये आवश्यक है? कोई भी एक ऐसे समाज को लें जहां कि आर्थिक रूप से कई वर्ग हों जैसेकि अत्यंत धनवान वर्ग(1 प्रतिशत जनसंख्या) जिनके पास कुल धन का 80 प्रतिशत धन हो। उच्च माध्यमिक वर्ग(15 प्रतिशत जनसंख्या) जिनके पास कुल धन का 10 प्रतिशत धन हो। माध्यमिक वर्ग(30 प्रतिशत जनसंख्या) जिनके पास कुल धन का 5 प्रतिशत धन हो और बाकि निर्धन वर्ग(54 प्रतिशत जनसंख्या) जिनके पास कुल धन का केवल 5 प्रतिशत ही आता हो। अब थोड़ा सा चिंतन करके देखें कि इतने आर्थिक असमानता के कारण समाज में क्या परिणाम आते हैं। हम सब ये तथ्य तो जानते ही हैं कि हम सभी इतना सुख तो चाहते ही हैं कि जहां हम संतुष्ट हो जायें, हमारे परिवार के दूसरे सदस्य संतुष्ट हो जायें। और ये तभी संभव है जबकि हम सबकी पहुंच उन सब विषयों तक हो जिनसे कि ये सुख हमें प्राप्त होते हैं। अब ये भी तथ्य है कि आजतक की व्यवस्था के अनुसार सभी विषय धन के आधार से ही हमारी पहुंच में आ पाते हैं। जिनके पास कम धन होगा वो कुछ ही विषयों को प्राप्त कर पायेंगे और जिनके पास अधिक धन होगा वो अधिक विषयों को प्राप्त कर पायेंगे। और जिनके पास धन होगा ही नहीं वो तो एक भी विषय को प्राप्त नहीं कर पायेंगे। अब जब कुल धन का 80 प्रतिशत केवल 1 प्रतिशत लोगों के पास ही होगा तो इससे समझ सकते हैं कि केवल 1 प्रतिशत लोग ही अपनी ईच्छानुसार विषयों को प्राप्त कर पायेंगे। बाकि 99 प्रतिशत लोग अपनी ईच्छानुसार विषयों को प्राप्त नहीं कर पायेंगे। अब जो लोग अपनी ईच्छानुसार विषयों को प्राप्त नहीं कर पायेंगे तो वे कोई दूसरे उपायों पर चिंतन करेंगे जिनसे कि वो कुछ और धन प्राप्त कर पायें। और इन्हीं दूसरे प्रकार के उपायों से प्रारम्भ होती है सारे अपराधों की यात्रा। क्योंकि व्यवस्था से अलग दूसरे उपाय तो वहीं होंगे जिनको व्यवस्था अपराध मानती होगी। जैसे अपहरण, चोरी,

डकैती, भ्रष्टाचार, छल कपट, लूट, हत्या, छोटे बड़े युद्ध, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, बलात्कार, दासता, दस्युता, मानसिक रोग, शारीरिक रोग, अविश्वास, प्रतिद्वंदिता, शत्रुता, धोखा आदि ये सब उपाय हैं कि कैसे अधिक से अधिक धन को प्राप्त किया जा सके या दूसरे अर्थों में कैसे अधिक से अधिक विषयों तक पहुंच बनायी जा सके ताकि जब भी उनकी ईच्छा हो, वो उस विषय को प्राप्त करके सुखी हों सकें। अब होता क्या है इससे कि सारे समाज में लोभ और भय का वातावरण बन जाता है। वो चाहे धनवान हो या निर्धन हो सभी लोभ और भय के वातावरण में जीने के लिए बाध्य हो जाते हैं। धनवान विषयों को तो प्राप्त कर लेते हैं परंतु इसके साथ हत्या हो जाने का, लुट जाने का, संबंध खो जाने आदि का भय भी उन्हें निरंतर लगा रहता है। जिसके कारण वो प्राप्त विषयों का सुख भी सही से प्राप्त नहीं कर पाते। और जिन्हें विषय ही प्राप्त नहीं है तो उनका जीवन तो नर्क के समान होता ही है। ऐसी दुर्व्यवस्था में ना तो धनवान ही और ना निर्धन ही सुखी हो पाता है। जीवन में किसी सार का, किसी अर्थ का अनुभव नहीं हो पाता। और मनुष्य कहीं और सुख की खोज में निकल पड़ता है। कोई सन्यासी बन जाता है, कोई काल्पनिक भगवान को बनाकर ही उसका भक्त बन जाता है और प्रतीक्षा करने लगता है कि कब भगवान प्रसन्न होंगे और अपने बैकुण्ठ में बुलायेंगे, जहां कि सुख ही सुख होगा और उसे ये आनन्द का नाम देता है। जबकि आनन्द का अर्थ केवल संसार के अनुभवों का अभाव होता है। ऐसा नहीं है कि वहां कोई और प्रकार का सुख होता है। लेकिन मनुष्य ने आनन्द को भी कोई सुख समझकर ही वो भगवान या समाधि आदि की आराधना में लगा रहता है। और निरंतर और भी अधिक दुखों को प्राप्त करता रहता है। लेकिन एक दिन तो कृपा होगी, एक दिन तो सुख यानिकि आनन्द प्राप्त होगा, ऐसी आशा में दिन रात आराधना में कठिन से कठिन प्रयास करता रहता है। निर्धन तो धन की प्राप्ति के उपाय करता रहता है इस आशा में कि धन के आने पर वह सुखी होगा। लेकिन धनवान को लगता है कि धन होने पर सुख तो मिलते है परंतु दुख भी बहुत मिलते हैं। और दुखों के रहते कोई सही से सुखों को भी कैसे अनुभव कर सकता है भला। तो कुल मिलाकर उसको ऐसा लगने लगता है कि धन में भी कुछ नहीं रखा। और वो भी इस भगवान वाले पथ पर देर सवेर निकल लेता है और सारे जीवन लोगों को यही उपदेश देता रहता है कि धन में कोई सुख नहीं है। कुछ लोग तार्किक आधार से समझकर इन लोगों के साथ हो भी लेते हैं कि जब इतना धनवान आदमी कह रहा है तो ऐसा ही होगा। लेकिन इतना होने पर भी सुख की ईच्छा समाप्त नहीं होती किसी की। इस संसार में ना सही किसी और लोक में ही सही पर चाहिए तो सुख ही वो भी लगातार बिना किसी रूकावट के।

परंतु इस संसार में सुख की आशा समाप्त हो चुकी है इसलिए हमारे लगभग सारे दर्शन ये ही ज्ञान दे रहे हैं कि इस संसार में दुख के अलावा कुछ नहीं है। यहां सुख एक छलावा है, एक भ्रम है। और कुछ दर्शन तो ये तक भी कह रहे हैं कि ये संसार ही अपने आप में एक भ्रम है, माया है, छलावा है। ये संसार दिखता तो है पर है नहीं। और कोई दर्शन तो यहां तक भी कह रहे हैं कि ये जो चेतन है, ये भी एक भ्रम ही है, केवल एक परिणाम है इस शरीर में होने वाली प्रक्रियाओं का। परंतु जब मैंने खोज की तो पाया कि ऐसा नहीं है। इस संसार में भी पूर्ण सुखी हुआ जा सकता है। केवल आवश्यकता है एक सही व्यवस्था की जोकि मैंने खोज भी दी है और लिख भी दी है। उसका अध्ययन करके आप भी इसी निष्कर्ष पर अत्यंत सरलता से पहुंच जायेंगे। मेरी लिखी पुस्तक **'संपूर्ण समाधान'** में इस नयी व्यवस्था का आप अध्ययन कर सकते हैं। जिसके आने पर फिर कोई दुख का उदय ना हो सकेगा।

उपर के उदाहरण में धन के होने से सुख आते है परंतु दूसरों के पास भी धन समानता में उपलब्ध ना होने के कारण दुख आते हैं। इसलिए इस ज्ञान के कारण आर्थिक असमानता या बोलें तो असमान मान के कारण समाज में दुख पैदा होते हैं। तो इस कारण जोभी ज्ञानी होगा वो सभी के लिए समानता की ही बात करेगा। ऐसा ज्ञानी सभी के साथ समानता के आधार से ही व्यवहार करेगा। असमानता वाले व्यवहार से समस्याएं ही उत्पन्न होती हैं और कोई भी ज्ञानी समाधान उत्पन्न करता है नाकि समस्याएं।

और अंत में ये मंत्र कह रहा है कि उसके कुल में कोई भी मनुष्य ब्रह्मज्ञान से हीन नहीं होगा। तो ये तो सही बात है कि यदि ये शिक्षा विद्यालय के माध्यम से सभी को दी जाये तो ज्ञान के रूप में तो सभी मनुष्य शिक्षा पूरी होने तक ब्रह्म को जान ही लेंगे। और जिसको विशेष रूप से जानना होगा वो भी ईच्छा होने पर आसानी से जान सकेगा या अनुभव भी कर सकेगा। जैसे आज भी लगभग सभी लोग मोबाइल के ज्ञान से परिचित हैं ही और यदि कोई उसको विशेष रूप से जानना चाहता है तो वो भी उसका कोर्स करके जान ही लेता है। ज्ञान तो उपलब्ध है ही। केवल ईच्छा होने की बात है। और यहां ब्रह्मज्ञान से तात्पर्य है सामान्य ब्रह्मज्ञान, नाकि विशेष ब्रह्मज्ञान। तो समान्य ब्रह्मज्ञान सभी को होगा उस व्यवस्था में। आप कह सकते हो कि सामान्य रूप से उस व्यवस्था में सभी ब्रह्मज्ञानी होंगे। सभी जानते होंगे कि ब्रह्म क्या है। इस संसार का उद्देश्य क्या है, ब्रह्म के अनुसार जीवन क्या है आदि। और लोग वैसा ही जी भी रहे होंगे, वो भी स्वभाविक रूप से। इसलिए नहीं कि ऐसे जीना चाहिए, याकि ये कोई नैतिकता है, बल्कि इसलिए कि वैसे जीने में ही उनको सुख हो

रहा होगा। सदा से वो वैसा ही जीना चाहते ही थे। ऐसा उस व्यवस्था के परिणाम स्वरूप हो रहा होगा, जोकि मैं आप सभी को बताने जा रहा हूं। यदि इस व्यवस्था को हम ले आते हैं तो ये सारे परिणाम स्वतः आ जायेंगे जिनका कि हम यहां उल्लेख कर रहे हैं। तो ये हम समझ गये होंगे कि स्वप्न स्थान विशेष रूप से ज्ञान का स्थान है। यानिकि मन और बुद्धि का जितना अधिक विकास होगा, उतना ही ये स्वप्न स्थान विकसित होगा। और उतना ही अधिक जाग्रतस्थान को सुखी बनाने में सहयोगी होगा। तो विचारवान होना अच्छी बात है। तो हमें विचारवान होना चाहिए। ये स्वप्नावस्था जितनी अधिक विकसित होगी, उतने ही हम विचारवान होंगे। इस स्थान के विकास से हमारी कल्पना शक्ति, चिंतन मनन करने की शक्ति, निष्कर्ष लेने की शक्ति आदि का उत्कर्ष होगा। शिक्षा के माध्यम से इस अवस्था को सरलता से विकसित किया जा सकता है। जिस प्रकार की शिक्षा और शिक्षा व्यवस्था होगी, उसी प्रकार की स्वप्न अवस्था हम लोगों की हो जायेगी। तो मन और बुद्धि का जैसा और जितना विकास होगा, हमारी स्वप्नावस्था भी वैसी ही हो जायेगी और इसके अनुरूप ही हमारी जाग्रत अवस्था होने लगेगी। हमारे सभी प्रकार के विकास का अंतिम परिणाम जाग्रत अवस्था में ही हमें सुख या दुख रूप में प्राप्त होता है। हमें ये स्मरण रखना चाहिए कि सारी अवस्थाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं और एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। बाहर की कैसी परस्तिथि है यानिकि जाग्रत अवस्था जैसी होगी उसका प्रभाव अंदर की सभी अवस्थाओं पर पड़ेगा और अंदर की अवस्थाएं जैसी होंगी उनका प्रभाव बाहर जाग्रत अवस्था पर पड़ेगा। और परिणाम में दुख या सुख हमें प्राप्त होंगे। तो हमें सभी अवस्थाओं को सही से विकसित करना है और इसी के लिए ही किसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता होती है कि जबतक बच्चा बड़ा होगा तो वो अंदर और बाहर से विकसित हो जाये जितना कि उसके लिए सम्भव है। ताकि वो अपना सारा जीवन अपनी ईच्छा के अनुरूप सुखी से जी सके और किसी दूसरे के दुख का कारण ना बने बल्कि सुखों का कारण बने। दूसरे के सुखों में स्वभाविकरूप से सहयोगी बनें। उपर के सारे चिंतन से ये निष्कर्ष निकलता है कि ये स्वप्नावस्था ज्ञान का स्थान है विशेष रूप से। इसमें ज्ञान का उत्कर्ष किये बिना हम जाग्रत अवस्था का भी विकास नहीं कर सकते। ये बात हमें स्मरण रखनी चाहिए। तो सारा ज्ञान विज्ञान इसी स्वप्नावस्था के सही विकास पर ही निर्भर करता है। और भी एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जीवन का उद्देश्य सुखी होना है नाकि ज्ञानी बनना। ज्ञानी होने में जिनको रूचि है या जिनको सुख मिलता है उन्हें ही विशेषरूप से ज्ञान के मार्ग में प्रयासरत होना चाहिए अथवा उनको सहयोग करना चाहिए। ऐसा नहीं करना चाहिए कि सबको ज्ञानी बनाना है और सब इस प्रयास में लग जायें। इससे उनको दुख पैदा होगा जिनकी कि ज्ञान में रूचि नहीं है। और इनके दुखी होने से ये

लोग इस दुख के कारण जो व्यवहार समाज में करेंगे उससे वो भी दुखी होने को बाध्य होंगे जोकि ज्ञानी हैं। तो समाज में सबकुछ रूचि आधारित ही होना चाहिए। वो चाहे ज्ञान, कर्म, भोग आदि में से कुछ भी हो।

ग्यारहवां मंत्र

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ।। 11 ।।

सुषुप्ति जिसका स्थान है, वह प्राज्ञ मान और लय के कारण तीसरी मात्रा मकार है। जो उपासक ऐसा जानता है, वह इस सम्पूर्ण जगत का मान प्रमाण(ज्ञात कर लेना) कर लेता है। और उसका लय स्थान हो जाता है।

सुषुप्ति स्थान में तीन शब्द आ रहे हैं प्राज्ञ, मान और लय। प्राज्ञ का अर्थ है ज्ञान करने वाला या ज्ञानी जिसे ज्ञान होता है, या पूर्व ज्ञान से संपन्न या पहले से प्राप्त ज्ञान। मान का अर्थ है कि जोभी यहां है उसकी उपयोगिता को जान लेना तात्पर्य स्वयं और संसार की उपयोगिता का ज्ञान। स्वयं से अर्थ है जीव जगत और संसार जोकि जीव जगत के लिए उपयोगी है। और लय का अर्थ है कि उसमें मिल जाना या ज्ञानी का ज्ञान के अनुसार हो जाना या ज्ञानी का ज्ञान के अनुसार अभिव्यक्ति देना या ज्ञानी इस ज्ञान के अनुसार जीवन जीने लगता है। इसका अर्थ लय ही उस ज्ञानी का स्थान हो जाता है। यानिकि ज्ञानी उस वस्तु की उपयोगिता का ज्ञान करने के बाद उस वस्तु को आत्मसात कर लेता है, उपयोग में ले लेता है और इससे सुखी और संतुष्ट होता है और यहां पर ये श्रंखला पूर्ण हो जाती है जोकि ज्ञानी से प्रारम्भ हुई थी और उसके लय पर पूर्ण हो जाती है। उदाहरण के लिए हम कोई ईच्छा करते हैं और फिर वो पूरी हो जाती है। इसे ऐसे देख सकते हैं कि मान लो खाना खाने की हमारी ईच्छा हुई, फिर खाना हमारे सामने आ गया। अब हम उस खाने को खा लेते हैं। इस उदाहरण में हम तो हो गए प्राज्ञ, भोजन हो गया मान और जब प्राज्ञ ने उस भोजन का भोग कर लिया तो ये हो गया लय हो जाना। अर्थात प्राज्ञ ने मान को स्वीकार किया या प्राज्ञ उस मान में लय कर गया। इसी बात को उपर मंत्र समझा रहा है। अब उदाहरण में तो मैंने एक देशीय घटना के माध्यम से आपको समझा दिया। अब इसी बात को विस्तार करके देखो कि जो भी ज्ञानी इस संसार को जान जाता है यानिकि इसके महत्व को जान जाता है या इस संसार का क्या मान है, ये समझ जाता है तो वो फिर उस महत्व में लय कर जाता है। यहां महत्व कहो या मान कहो एक ही बात है। किसी वस्तु का महत्व ही उसका मान होता है। इसके साथ

साथ वो स्वयं को भी जान जाता है कि वो इस संसार में क्यों है, उसका क्या उद्देश्य है इस संसार में। हम सब एक दूसरे के लिए संसार ही हैं। जैसे कि मैं औरों के लिए और दूसरे मेरे लिए संसार ही होते हैं। ये सब ज्ञान जानने के बाद ज्ञानी का स्थान लय हो जाता है, यही ये मंत्र कह रहा है।

अंत में हम कह सकते हैं कि जो भी आत्मा का यानिकि स्वयं का ज्ञानी होगा वो अपने ज्ञान में लय कर ही जायेगा अर्थात ज्ञान के आधार से ही व्यवहार करेगा। और ये ही उसके ज्ञान की कसौटी भी होगी। जो मनुष्य जिस प्रकार का व्यवहार कर रहा हो उससे ही उसके ज्ञान का पता चलेगा। अब कोई व्यक्ति कहता हो कि वो आत्मज्ञानी है और जीवन आत्म अज्ञानी की तरह जिए तो इससे पता चल जायेगा कि वो व्यक्ति असत्य बोल रहा है। सुषुप्ति स्थान में प्राज्ञ और चित्त यानिकि व्यक्तित्व रहते हैं। आप और आपसे जुड़ी सारी स्मृति इस सुषुप्ति स्थान में ही रहती है। और यह तीसरा है और 'होने' में देखें तो ये अंतिम होगा। अब इससे आगे तो 'नहीं होना' ही होगा जिसे चौथा भी बोला गया है। अगले मंत्र में उसी के बारे में बताया गया है।

ये समाधी का स्थान भी है। इस स्थान के ज्ञान और अभ्यास के द्वारा जब इस पर नियंत्रण हो जाता है तो इस अवस्था का उपयोग हम किसी भी वस्तु आदि का ज्ञान विज्ञान जानने के लिए भी कर सकते हैं या आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान करने के लिए भी इस स्थान का उपयोग कर सकते हैं। इस स्थान में हमारी सारी चित्तवृत्तियां स्वभाविक रूप से निरोध की अवस्था में रहती हैं। इस कारण हम वहां अपनी ईच्छा से जिस भी वृत्ति का उपयोग करना चाहे तो वहां हम कर सकते हैं। इसी कारण से हम वहां किसी भी विषय पर पूर्णरूप से एकाग्र हो सकते हैं और जोभी हम उस विषय पर खोजबीन या चिंतन आदि करना चाहते हैं वो सरलता से कर सकते हैं। इसीलिए जो लोग इस अवस्था को हस्तगत कर लेते हैं वो ही सरलता से ज्ञान विज्ञान में कार्य कर पाते हैं। सही व्यवस्था में ये अवस्था स्वभाविक रूप से ही खोजी लोगों को उनकी आवश्यकता और रूचि के अनुसार प्राप्त होती रहती है। क्योंकि सही व्यवस्था में सबको उनकी रूचि अनुसार ही कार्य मिलता है। और जिन कार्यों में हमारी रूचि होती है तो हमारी अंदर की अवस्थाएं उस तरह का अभ्यास होने के कारण वैसे ही विकसित होती रहती है और ईच्छित होने के कारण सुख भी बना रहता है जोकि सबका अंतिम रूप से उद्देश्य होता है जीवन का। हम इस अवस्था में अधिकार करने के बाद कोई नई संरचना भी कर सकते हैं। और उसे स्वप्नावस्था के माध्यम से प्ले भी करके देख सकते हैं कि ये किन परस्तिथियों में कैसे व्यवहारित होगी। और इस प्रकार हमें जैसी संरचना चाहिए उसे बना सकते हैं और फिर इस जाग्रत स्थान में वैसा ही उत्पन्न कर सकते हैं। उससे संबंधित सुखों को

प्राप्त कर सकते हैं। इस अवस्था में निर्बाध रूप से चिंतन की प्रक्रिया को किसी भी विषय पर उसकी अधिकतम गहराई तक आसानी से किया जा सकता है और उसका ज्ञान और उसकी रचना की जा सकती है। इस अवस्था को 'कारण शरीर' के नाम से भी जाना जाता है। यहां हम किसी भी कारण को उत्पन्न कर सकते हैं और फिर परिणाम या अंतिम कार्य के रूप में इस जाग्रत स्थान में प्राप्त कर सकते हैं। कारण शरीर से अर्थ समझ लेना चाहिए यहां पर, शरीर या स्थान यहां एक ही बात है और कारण का तात्पर्य है यहां जो शुद्ध प्राण है वो जिस संस्कार को ग्रहण करता है तो उसी के अनुसार ही वह प्राण उस संस्कार के जैसा पहले सूक्ष्म होता हुआ इस जाग्रत स्थान में स्थूल गुणों के साथ अभिव्यक्त हो जाता है। उस स्थान को कारण शरीर इसीलिए कहते हैं क्योंकि इसी स्थान में प्राण(चेतन) प्रकृति को रचता भी है और उसे ग्रहण करके उस जैसे होने की दिशा में अग्रसर हो जाता है और इस स्थूल संसार में उचित परस्तिथियों में अभिव्यक्त हो जाता है। तो अभी आप कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का अर्थ समझ गये होंगे। उदाहरण के लिए कम्पूटर में सॉफटवेअर प्रोग्रामिंग को ले सकते हैं। जिस प्रकार कम्पूटर में सॉफटवेअर बनाकर बार बार उसे स्क्रीन पर रन करके देखते हैं और ऐसा तबतक करते रहते हैं जबतक कि अपेक्षित परिणाम नहीं आ जाता। उसके बाद उसे अंतिमरूप से प्रयोग के लिए लोगों के बीच जारी किया जाता है। इसी प्रकार सुषुप्ति स्थान में कोई भी सॉफटवेअर या कारण या बीज का निर्माण किया जा सकता है और उसे स्वप्न स्थान के माध्यम से प्ले करके देख सकते हैं और इस प्रक्रिया को तबतक करते हैं जबतक जैसा परिणाम चाहिए वैसा ना आ जाये। उसके बाद उसे लोगों के लिए प्रयोग किया जा सकता है और अपेक्षित सुख प्राप्त किये जा सकते हैं।

ये जो अचेतन है या जिसे यहां सुषुप्ति अवस्था कहा जा रहा है, यहां ही सारे भाव उत्पन्न होते हैं। हमारी पसंद और नापसंद सबकुछ यहीं पर संग्रहीत रहता है। और चूंकि ये अचेतन अवस्था है तो इसमें हम अपनी ईच्छानुसार कोई परिवर्तन कर नहीं सकते। यहां परिवर्तन करने के लिए दो ही रास्ते होते हैं। पहला तो जोकि सबके लिए सुलभ है और वो है अभ्यास के द्वारा। जैसे आपको साईकिल चलाना नहीं आता। तो उसे आप अभ्यास करके सीख सकते हैं और फिर और अधिक अभ्यास करके उसमें दक्ष हो सकते हैं। इस अभ्यास के द्वारा किसी बात को हम अपने अचेतन तक पहुंचा सकते हैं। या पहले से उसमें कुछ ऐसा अभ्यास हो रखा है जिसको कि हम बदलना चाहते हैं तो उसके उल्टा अभ्यास से उसे आप बदल सकते हैं। इसी प्रकार हमारी पसंद, नापसंद, हमारी योग्यता, क्षमता आदि को हम अभ्यास के द्वारा

अपने अचेतन में स्थापित करते हैं या बदलते हैं। हमारा सारा व्यक्तित्व ऐसे ही बनता और बदलता है।

एक दूसरा और तरीका है इस अचेतन को बनाने या बदलने का। लेकिन वो केवल चेतनावस्था प्राप्त लोगों को ही उपलब्ध होता है। वो सीधे ही अपने अचेतन में कई प्रकार के बदलाव कर पाते हैं। या नये प्रकार का अचेतन बना पाते हैं। तो जो भी मनुष्य जितना अधिक इस चेतनावस्था में स्थित होगा वो उतनी ही सरलता से और उतनी ही शीघ्रता से अपने अंदर परिवर्तन कर सकता है। जैसे जितने भी प्रकार के भाव होते हैं, उदाहरण के लिए प्रेम, ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता, सबके भले की भावना, करूणा, दया, मित्रता, सभी प्रकार के संबंध आदि। ये सभी भाव बाहर हुई घटनाओं या परिस्थितियों के कारण अपने आप ही हमारे अंदर उत्पन्न होते और विलीन होते रहते हैं। सामान्य लोग अपने अंदर इन सभी भावों को विभिन्न समयों में अनुभव करते हैं। सुखी होने पर उसे बार बार करना चाहते हैं और दुखी होने पर उससे दूरी बनाकर रखना चाहते हैं। लेकिन इसके लिए उन्हें बाहर की घटनाओं या परिस्थितियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। क्योंकि सामान्य लोग सीधे अपने अचेतन में कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकते। लेकिन चेतनावस्था के लोग इसमें किसी सीमातक सीधे ही अंतर कर सकने की स्थिति में होते हैं। इसीलिए आपने कई लोग देखे होंगे जोकि नकारात्मक भावों से बचे रहते हैं। या उन नकारात्मक घटनाओं का या परिस्थितियों का प्रभाव वो अपने अंदर नहीं जाने देते। या जाता भी है तो जल्दी ही वो उसे सम कर लेते हैं। लेकिन इसका सही उपाय तो सबके लिए ये ही है कि बाहर की व्यवस्था को ही सही कर लिया जाये ताकि जिससे केवल अच्छे भाव ही हमारे अचेतन में जन्म ले पायें और वहां बने रहें। इसीलिए पहले ही कहा गया है कि प्रथम जाग्रतावस्था ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। जो भी समाधान करना है उस तल पर ही करना चाहिए। और वैसे भी जहां समस्या होगी, उसे वहीं ना समाधित किया जायेगा ? हमारी सारी ईच्छाएं इसी जाग्रतावस्था के लिए ही होती है। यहीं सारी समस्याएं भी उत्पन्न होती है। और उनका समाधान भी यहीं होना चाहिए नाकि किसी और तल पर।

और इस तल को अचेतन क्यों बनाया गया है, इसे भी समझ लेना आवश्यक है। अचेतन का अर्थ होता है जड़ता या स्थिरता। तो जिस भी वस्तु अथवा स्थिति को स्थिर रखना हो तो उसे आवश्यकता के अनुसार जड़ करना होगा या फिक्स करना होता है। यदि उसको जड़ नहीं करेंगे तो वो वस्तु या स्थिति स्थिर नहीं रहेगी। और वैसा परिणाम नहीं देगी जैसा कि हमें चाहिए। उदाहरण के लिए यदि साईकिल में एक भी बोल्ट स्थिर ना रहे तो साईकिल हमारे लिए उपयोगी नहीं रह जायेगी। ये

आदमी का शरीर, यदि इसमें सारे अंग उसी हिसाब से कार्य ना करें जिसके लिए कि इनका निर्माण हुआ तो आदमी के शरीर में कभी भी कुछ भी होने लगेगा। इससे आदमी के अंदर पूरी तरह से अव्यवस्था फैल जायेगी जोकि बड़ी ही अजीब सी होगी। अर्थात ये शरीर भी किसी काम का नही बचेगा। इस संसार में सभी कुछ एक निश्चित नियमों के आधार से गति करता रहता है या परिवर्तित होता रहता है। और ये स्थिर नियम अचेतनता के कारण ही सम्भव हो पाते हैं। इसीलिए इस संसार में जितना महत्व चेतनता का है उतना ही अचेतनता का भी है। और पूरा संसार इसी चेतनता और अचेतनता के स्तरों का परिणाम ही है। परिवर्तनशीलता के कई स्तर हैं। अचेतन स्तर में परिवर्तन बहुत ही धीमें गति से होता है और चेतन स्तर पर तेज़ी से। चेतनता के स्तर पर परिवर्तनशीलता ईच्छा पर निर्भर करती है परंतु अचेतन स्तर पर परिवर्तनशीलता स्थिर नियमों के आधार से एक निश्चित गति के आधार से होती रहती है। इच्छा का प्रभाव अचेतन स्तर पर बहुत कम और बहुत देरी से पहुंचता है। उदाहरण के लिए मनुष्य का व्यक्तित्व बहुत कुछ स्थिर जैसा हो पाता है इसी अचेतन स्तर के कारण। और उपरी तौर पर बदलता भी रहता है चेतन स्तर के कारण। यदि मनुष्य में ये अचेतन का स्तर ना हो तो मनुष्य में सभी प्रकार के बदलाव बहुत तेजी से होते रहेंगे। और इससे किसी व्यक्तित्व का अस्तित्व भी नहीं बन सकेगा। व्यक्तित्व के पास कोई याददाश्त भी नहीं हो सकेगी। फिर एक मनुष्य का कोई सम्बन्ध भी किसी दूसरे मनुष्य से नहीं हो सकेगा। क्योंकि उसको कुछ याद ही नहीं रहेगा। फिर कोई विकास भी नहीं होगा क्योंकि कोई ज्ञान विज्ञान ना तो ये खोज पायेगा और ना ही याद रख पायेगा। ना ही इसमें कोई ज्ञान, क्षमता आदि का विकास हो पायेगा। आदमी साईकिल तक भी नहीं सीख पायेगा। तो हम समझ सकते हैं कि अचेतन का कितना महत्व है मनुष्य के जीवन में। मनुष्य में चेतनता और अचेतनता मिलकर ही एक भरपूर मनुष्य जैसा अस्तित्व पैदा कर पाती है। अच्छी चेतनता के कारण भाषा की खोज हो पाती है और अचेतनता के कारण भाषा को याद रखा जा सकता है और उसको हम जीवन में प्रयोग कर पाते हैं। तो चेतनता और अचेतनता के मेल से ही ये सब सम्भव हो पाता है जोकि हम मनुष्य के जीवन में देख पाते है, समझ पाते हैं। मनुष्य में या संसार में जितनी भी स्थिरता देख पाते हैं वो सब इसी अचेतनता के गुण के कारण ही हो पाती है।

बारहवां मंत्र

अमात्रश्चतुर्थो अव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवो अद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ।। 12 ।।

मात्रा रहित चौथा आत्मा ही है। वह अव्यवहार्य, प्रपंचोपशम, शिव और अद्वैत है। इस प्रकार ओंकार आत्मा ही है। जो उसे इस प्रकार जानता है, वह स्वतः अपने आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है।

चौथे पाद को अमात्रा कहा है, इसे समझना बहुत आवश्यक है। ओमकार से ही समझें कि जब आप ओम ध्वनि को प्रारंभ करते हैं तो क्या होता कि ये ध्वनि के पहले ध्वनि नहीं है और फिर अ से प्रारम्भ होकर अ और उ जोकि ओ हो जाती है, में अधिक समय रहती है और फिर म् के साथ आती हुई समाप्त हो जाती है। और समाप्त होने के बाद अब ओम की ध्वनि का अभाव हो जाता है। अर्थात ध्वनि के पहले और ध्वनि के बाद शांत स्तिथि होती है, ध्वनि का अभाव होता है। तो इसी प्रकार इन तीन अवस्थाओं के पहले और इनके बाद जो अवस्था होती है वो शांत अवस्था होती है जिसमें कि ऐसा कुछ नहीं होता जोकि उन तीन अवस्थाओं में होता है। जैसाकि आगे मंत्र कह ही रहा है कि वह अव्यवहार्य, प्रपंचोपशम, शिव और अद्वैत है। यानिकि उसमें कोई व्यवहार नहीं है, प्रपंच अर्थात ये पंचमहाभूत भी शांत हो जाते हैं, यानिकि प्रपंच का अभाव हो जाता है। जैसेकि ओम की ध्वनि शांत हो जाती है, उसका अभाव हो जाता है। शिव है, शिव का अर्थ ही होता है शांत अर्थात अभाव होने की स्तिथि। फिर मंत्र और आगे कहता है कि अद्वैत है। इस संसार में कुछ भी होने के लिए द्वैत का होना आवश्यक है। बिना द्वैत के कुछ भी **'होने'** की स्तिथि में नहीं आ सकता। उदाहरण के लिए नदी है तो ये किन्हीं दो छोरों के बीच ही अस्तित्वगत हो सकती है। एक छोर से किसी का अस्तित्व संभव नहीं है। इस संसार में किसी भी वस्तु आदि का अस्तित्व कहीं से प्रारम्भ होगा और कहीं पर समाप्त हो जायेगा। सभी कुछ सीमा के अंतर्गत ही अस्तित्वमान रहता है। असीम कभी भी होने की स्तिथि में नहीं हो सकता। ये संभव नहीं है। यहां सभी कुछ आदि अंत वाला ही होगा। हम यदि कोई एक रेखा बनायें तो उसके भी दो छोर हो ही जायेंगे तुरंत। हम एक छोर वाली कोई रेखा नहीं बना सकते। तो मंत्र कह रहा है कि ये आत्मा चौथा अद्वैत है यानिकि मंत्र कहना चाह रहा है कि ये अवस्था वो है जहां हमारे होनेपने का पूर्णतया अभाव हो जाता है। अर्थात ये जो तत्व है, ये कुछ ऐसा है कि इसमें 'होने' और 'ना होने' के दोनों गुण उपस्थित हैं। ये अपनी ईच्छानुसार हो जाता है और ना भी हो जाता है।

जैसे हम अपनी ईच्छानुसार सो जाते हैं और फिर जाग जाते हैं कुछ इस प्रकार से। ये जब चाहे तो सक्रिय होकर गुणवान हो जाता है और जब चाहे तो अक्रिय होकर निर्गुण हो जाता है। जब चाहे तो द्वैत हो जाता है और जब चाहे तो अद्वैत हो जाता है। जब चाहे तो व्यवहरित होने लगता है और जब चाहे तो अव्यवहरित हो जाता है। जब चाहे तो जाग्रत हो जाता है और जब चाहे तो निद्रा में चला जाता है या होने के अभाव में चला जाता है। तो ये जो इसकी चौथी अवस्था है ये इसके अभाव की अवस्था है। इसे शून्य भी कहते हैं।

इस मंत्र से एक और बात समझ आती है कि यदि उस आदि तत्व में ये भाव और अभाव का गुण ना हो तो ना तो ये ब्रह्म की कोई सम्भावना होगी और ना ही ब्रह्माण्ड की कोई सम्भावना बचेगी। ये भाव और अभाव के कारण ही दोनों का अस्तित्व संभव हो पाता है। इसी के कारण ही परिवर्तनशीलता अस्तित्व में आती है। इसी के कारण ही ईच्छा करना संभव हो पाता है। इसी के कारण ही चेतन और अचेतन होना संभव हो पाता है। इसी के कारण ही एक, अनेक हो पाता है। इसी के कारण ही द्वैत और अद्वैत हो पाता है। इसी के कारण ही विकल्प हो पाते हैं। अर्थात सबकुछ इसी कारण हो पाता है। यदि हम आत्मा में से ये भाव और अभाव की अवस्था में से एक भी अवस्था को निकाल देंगे तो कुछ भी संभव नहीं हो सकेगा। ईच्छा ही संभव नहीं हो सकेगी तो बाकि तो ईच्छा के बाद ही संभव होता है। इसलिए किसी भी अस्तित्व में ये दोनों अवस्थाओं का होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए कम्पूटर में से यदि 0 और 1 में से एक भी निकाल देंगे तो कम्पूटर का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। तो उस आदितत्व में ये दोनों भाव और अभाव की अवस्थाओं का होना आवश्यक है, ऑन और ऑफ दोनों का होना आवश्यक है। नहीं तो किसी का अस्तित्व भी संभव नहीं हो सकेगा।

आगे मंत्र कह रहा है कि जो भी आत्मा की इस ना होने की अवस्था को जान जाता है वो इसमें प्रवेश कर जाता है। अर्थात ऐसा मनुष्य जब चाहे अभाव की स्तिथि में जा सकने में सक्षम हो जाता है। तो ऐसा मनुष्य ईच्छानुसार अभाव की स्तिथि में जा सकता है। भाव की स्तिथि में तो हम जन्म से ही होते हैं परंतु अभाव की स्तिथि में हम तभी जा पाते हैं जबकि हम थके हों या अस्वस्थ हों। लेकिन इस चौथी अवस्था के जानने से हम ईच्छानुसार भी इस अवस्था में कभी भी जा सकते हैं। इस अवस्था में हम परमविश्राम पाते हैं। इसीलिए यदि हम बहुत अधिक थके हों तो प्राकृतिकरूप से इस चौथी अवस्था में प्रवेश कर जाते हैं। लेकिन यदि हम इसको जान लें तो बिना थके भी ईच्छानुसार इसमें प्रवेश कर सकते हैं। लेकिन वहां कुछ होता नहीं है सिवाय

विश्राम के, इसे भी ध्यान रखना चाहिए। जितनी भी सारी महिमा है, जितना भी सारा गुणगान है, जितना भी सारा जानना, करना और भोगना है वो वहां कुछ भी नहीं होता। क्योंकि वहां हमारा ही लोप हो जाता है। और जब हम ही नहीं होते तो कुछ भी होने का कोई अर्थ भी नहीं होता। यहां एक बात घ्यान रखनी चाहिए कि जब हम कह रहे हैं कि उसका अभाव हो जाता है तो वहां कुछ भी नहीं होता तो इसका अर्थ ये है कि चेतनता का अभाव हो जाता है और जड़ता का उदय हो जाता है अर्थात तत्व तो शेष रहता है लेकिन जड़ अवस्था में। चेतनता का अभाव हो जाता है। अब जब चेतन का ही अभाव हो जाता है तो वहां कोई अनुभव कर्ता नहीं होता। और जब कोई अनुभव कर्ता नहीं रहता तो वहां कोई ज्ञान भी नहीं रहता, क्योंकि ज्ञान तो चेतन को ही हो सकता है। तो इस कारण कहा जाता है कि वहां सधन आकाश के अलावा कुछ नहीं बचा रहता जड़ अवस्था में। तो इसको समान्य भाषा में कह दिया जाता है कि वहां कुछ नहीं होता क्योंकि ज्ञानी और ज्ञान का अभाव है तो कोई प्रक्रिया ही नहीं होती, या कह सकते हैं कि क्रिया का निम्नतम स्तर बचा रहता है जोकि पहले से ही रचित है। तो इसे अभाव की स्थिति कहा जाता है। फिर जब विश्राम के बाद चेतन का भाव प्रारम्भ होगा तो ही कोई भी होनेपने वाली या ईच्छित प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। तो कह सकते हैं कि आकाश का कभी भी पूर्णतया अभाव नहीं होता। वो सदा ही बना रहता है। हां आकाश कभी चेतन तो कभी अचेतन होता रहता है जैसे कि जीव कभी चेतन और निद्रा में बना रहता है। इसीलिए अभाव केवल चेतनता का होता है नाकि तत्व का। तत्व तो सदा ही बना रहता है किसी ना किसी अवस्था में। तत्व का कभी लोप या अभाव नहीं होता। जैसे विज्ञान भी कह ही रहा है कि उर्जा को ना तो पैदा किया जा सकता है और ना ही नष्ट किया जा सकता है केवल एक रूप से दूसरे रूप में रूपांतरित किया जा सकता है आदि।

अवस्थाओं में संबंध

तो आशा है कि अब हम उपरोक्त ओम की या ब्रहम की या आत्मा की चारों अवस्थाओं को भलीभांति समझ चुके होंगे। इन अवस्थाओं में प्रवेश करने से पहले इन अवस्थाओं के आपसी संबंध को समझना भी अति आवश्यक है।

वर्तमान स्तिथि ये है कि हम सब लोग जाग्रत अवस्था में तो जन्म से आ ही गये हैं। और खानपान, खेलकूद से हमारे स्थूल शरीर का विकास हो ही रहा है। हालांकि सभी को ये विकास करने का ईच्छित और समान अवसर अभी तक नहीं मिल पा रहा है। और जिनको मिल भी पा रहा है तो सही ज्ञान और सही व्यवस्था के अभाव में उनका विकास भी वैसा नहीं हो पा रहा जैसाकि होना चाहिए। तो कुछ लोग विकसित तो हो रहे हैं पर उनमें दूसरी कमियां भी साथ में विकसित हो रही हैं। उदाहरण के लिए धनवानों को ही लें। धनवानों में भी कई वर्ग होते हैं परंतु उन सभी के पास इतना पर्याप्त धन होता ही है कि वे अच्छे से अपने बच्चों का लालन पालन कर सकते हैं, और वे प्रयास भी पूरा ही करते हैं। परंतु धनवानों में भी धन की असामनता होने के कारण बच्चे अपने जीवन में कई ऐसे अंतर देखते हैं आपस में, जैसे वे अनुभव करते हैं कि दूसरे कुछ बच्चे उनसे बड़ी कार में स्कूल आ रहे हैं। और कुछ उनसे छोटी कार में आ रहे हैं। कुछ के पास सुरक्षाबल भी होता है आदि। इन अनुभवों से वे अपने महान होने का और साथ में हीन होने का भाव ले रहे होते हैं। अब जो बच्चे महानता और हीनता के दो विपरीत भावों के साथ विकसित होंगे तो उनके अंदर विरोधाभास की स्तिथि गहरी से गहरी होती चली जायेगी जोकि उन बच्चों में आंतरिक दूरीयां उत्पन्न करेगी। परिणामतः उनमें एक दूसरे के प्रति द्वेष, घृणा, असहयोग, प्रतिस्पर्धा, दूसरे को दबाने की ईच्छा, दूसरे को छोटा सिद्ध करने की ईच्छा, ईर्ष्या, छोटी और बड़ी लड़ाइयां, दूसरे को दुख में देखकर खुश होना आदि प्रकार की नकारात्मक ईच्छाएं, विचार, भाव और कर्म उत्पन्न होने लगते हैं। ये सब दूसरों के प्रतिकूल ईच्छाएं, विचार, भाव और कर्म हैं। अब जैसे जैसे आत्मा में ये नकारात्मकतायें धीरे धीरे और पुष्ट होती जायेंगी तो वैसे वैसे कई प्रकार के विरोधाभासों को लेकर सभी बच्चे विकसित होंगे। और जिन लोगों में अंदर और बाहर सब जगह विरोधाभास ही हों तो वे सब सदैव संशय में ही रहेंगे। वो कभी ये निर्णय नहीं कर पायेंगे जीवन में कि क्या शुभ है और क्या अशुभ है। क्योंकि बहुत सारे ऐसे कार्य हैं जिनसे दूसरों को तो दुख होता है लेकिन खुद को सुख अनुभव होता है। अब ये ही तो कसौटी है सही और गलत की, कि जिससे सुख मिले वो सही और

जिससे दुख मिले वो गलत? चाहे हम जानते हों या ना जानते हों लेकिन हमारे अंदर स्वभाविकरूप से कसौटी ये ही रहती है। सारा जीवन हम सभी सुख पाने के लिए और दुख से बचने के लिए ही प्रयास करते नजर आते हैं। तो इसप्रकार वे बच्चे सदैव ही संशय में रहते हैं कि क्या सही है और क्या गलत। सबके जीवन का उद्देश्य क्या है, ये ज्ञातारूप से ज्ञात नहीं कर पाते। उनके अपने जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है, ये भी नहीं ज्ञात कर पाते। उन्हें ऐसा ही लगता रहता है कि उनके जीवन का उद्देश्य है सबसे आगे निकल जाना, सबसे उपर बैठ जाना, सबके सिरों पर बैठ जाना, सबको अपने अनुसार चलाना आदि। और जिस समाज को ये ही ना पता हो कि सबके जीवन का और उनके अपने जीवन का क्या उद्देश्य है तो वो समाज तो दिशाहीन ही होगा ना? चाहे जितना विज्ञान और तकनीकि ज्ञान हो जाये पर जीवन के ज्ञान के बारे में अज्ञानी ही होगा, संशयग्रस्त ही होगा। जैसा कि परिणाम से हमें दिखाई भी दे रहा है। जीवन के बारे में सभी लोग अज्ञानी जैसे ही बातें करते दिखाई पड़ते हैं। दिशाहीनता के कारण या अज्ञानता के कारण समाज में गलत प्रकार की व्यवस्था रहेगी और आर्थिक असमानता और दूसरी समस्याएं उत्पन्न होती रहेंगी ही। इस प्रकार समाज विभिन्न वर्गों में बंटने लगता है। उस समाज में लोगों के अंदर कई प्रकार की दूरियां उत्पन्न होने लगती है। कोई मालिक बनने लगता है तो कोई दास बनने लगता है। प्रत्येक मनुष्य किसी का मालिक और किसी का दास बनने लगता है। इसप्रकार से हम समझ सकते हैं कि जीवन से संबंधित सही ज्ञान ना होने के कारण और उसके परिणामतः सही व्यवस्था ना होने के कारण दो प्रकार के रूग्ण विकास होने लगते हैं। एक तो हीनता का भाव और दूसरा महानता का भाव। फिर उसका परिणाम तो हमारे सामने है ही कि समाज में असमान स्तिथि होने से कितना एक दूसरे का अपमान, एक दूसरे के लिए दूषित ईच्छाएं, एक दूसरे पर क्रोध, अधिक का लोभ और अपनों का अनावश्यक मोह उत्पन्न होने लगता है जिसके कारण जिनके पास धन नहीं है वो तो सुखी हो ही नहीं पाते परंतु जिनके पास धन है भी तो वो भी अधिक सुखी नहीं हो पाते। कुल मिलाकर सभी अधिक या कम दुखी जीवन जीने को बाध्य रहते हैं। जब जीवन में दुख हों, भविष्य असुरक्षित हो तो वर्तमान में मनुष्य उन सुखों को भी अच्छे से भोग नहीं पाता जोकि उनके पास हैं। परिणामस्वरूप हम दुख अधिक अनुभव करते हैं जबकि हमारे जीवन में सुख भी होते हैं। जब हमारे जीवन में दुख होते हैं तो हमारा अधिकतम समय उन दुखों से भयभीत होने में या इस बात का प्रबंधन करने में जाता है कि ये दुख हमारे जीवन में ना आयें। और इस भय से मुक्ति पाने के लिए हम अपने श्रम और धन का उपयोग करते हैं, जिनसे कि हम और अधिक सुख प्राप्त कर सकते थे। उदाहरण के लिए सारी सुरक्षा के उपायों पर कितना धन और श्रम हम लोग खर्च करते हैं। सभी देश अपने

यहां बजट का 50 प्रतिशत आर्मी के उपर, विभिन्न प्रकार की पुलिस, विभिन्न प्रकार प्राईवेट और सरकारी गार्डस, बॉडी गार्डस, टैक्स विभाग, विभिन्न प्रकार के जांच विभाग, जैसे भारत में सी आई डी और सी बी आई, एक्स और वाई प्रकार की विशेष सुरक्षा, न्याय व्यवस्था, बैंकिंग सिस्टम आदि। आप इन प्रत्यक्ष उदाहरणों से समझ सकते हैं कि हम अपना आधे से अधिक समय अपना श्रम आदि केवल और केवल दुखों के भय से बचाव के लिए ही खर्च करते रहते हैं जोकि यदि सुखों को पैदा करने में लगाया होता तो हम दुगुना या तिगुना और अधिक सुखी होते। हम समझ सकते हैं कि जीवन के बारे में अज्ञान से या हम कहें कि गलत प्रकार के ज्ञान से या हम कहें कि जीवन के बारे में संशय वाले ज्ञान के कारण हम लोग भय में जीने को बाध्य रहते हैं और अपना अधिकतम श्रम इसी को दूर करने में लगाते रहने को बाध्य रहते हैं। और आश्चर्य है कि फिर भी इस भय से मुक्ति नहीं मिलती, इस भय से मौक्ष नहीं मिलता। ये भय हमारे जीवन का आवश्यक अंग जैसा अनुभव होने लगता है। ऐसा लगने लगता है कि जैसे भय हमारे जीवन से कभी समाप्त नहीं होगा जोकि पिछले लम्बे इतिहास से अनुभव में भी आता है।

जबकि सुखों को अनुभव करने के लिए तो जीवन का सामान्य या स्वस्थ होना आवश्यक है। अस्वस्थ व्यक्ति भोजन का स्वाद भी अच्छे से नहीं ले पाता, उससे भी वो दुख ही पाने लगता है। तो सुखी होने के लिए दोनों का स्वस्थ होना आवश्यक है, भोगने वाले का और भोगों का। दोनों में से एक भी अस्वस्थ होगा तो सुख नहीं प्राप्त होगा। और जीवन व्यर्थ ही लगने लगेगा, बोझ ही लगने लगेगा, सारहीन लगने लगेगा। बुद्ध का पहला वचन स्मरण होने लगेगा कि जीवन दुख ही है। दुख के अलावा कुछ नहीं। जो सुख भी जान पड़ता है वो भी परिणाम में दुख देने वाला ही है। और चलो साधक बनो, साधू बनो और मोक्ष प्राप्त करो आदि जैसे पलायनकारी और जीवन में नकारात्मक ईच्छाएं, भाव, विचार और कर्म प्रारम्भ होने का सिलसिला प्रारम्भ होने लगता हैं। और ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे ये कभी नही रूकेगा। इसी नकारात्मकता पर आधारित दर्शन बनने लगते हैं, इसी नकारात्मकता पर आधारित महात्मा लोग उत्पन्न होने लगते हैं। जीवन की सारी दिशा और दशा नकारात्मक ही होने लगती है। सकारात्मकता जैसे केवल कल्पना ही लगने लगती है जीवन में। यदि कोई सकारात्मकता की बाते भी करता है तो ऐसा लगता है कि इस आदमी को जीवन का वास्तविक ज्ञान नहीं है, ये काल्पनिक बातें कर रहा है, युटोपियन जैसी बाते कर रहा है। और जो जीवन से पलायन की बात करता है वो ऐसा लगने लगता है कि देखो कितना महान ज्ञानी है, बड़ा महात्मा है, निर्वाण को प्राप्त व्यक्ति है। कहने का तातपर्य ये है कि पूरी धारा ही नकारात्मक या पलायनवादी हो जाती है।

जैसा कि अभी हम सब अपने चारो ओर प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं अपने और दूसरों के जीवन में।

इसप्रकार मनुष्य और फिर एक बड़ा वर्ग धीरे धीरे प्रकृति के विपरीत दिशा में गति करने का प्रयास करने लगता है। अब ये अलग बात है कि इसमें किसी को सफलता नहीं मिलती। और मिलेगी भी कैसे, जब प्रकृति की दिशा में ही सुखी नहीं हो पा रहे हैं तो प्रकृति के विपरीत दिशा में तो सुख असंभव ही होगा। ये ऐसे ही है जैसे कि एक आदमी नदी के तेज प्रवाह की दिशा में ही तैर नहीं पा रहा है तो भला प्रवाह के विपरीत दिशा में तैरना तो उसके लिए असंभव ही होगा। इसलिए पहले ये निर्णय करना आवश्यक है कि हमें प्रकृति की दिशा में गति करना है या कि उसके विपरीत दिशा में। अर्थात हमारे जीवन की दिशा क्या हो। एक तो सामूहिक दिशा और फिर उसमें व्यक्तिगत दिशा क्या हो। इसका जबतक सही ज्ञान नहीं होगा, तबतक ये नहीं निर्णय हो सकता कि हमारा अगला चरण क्या हो। या कि आपको लगता है कि हो सकता है? बिना सही दिशा के हमारा कोई भी चरण कैसा भी परिणाम दे सकता है, क्योंकि तब हम तो तुक्का मार रहे हैं ना। तो उसका परिणाम सुख या दुख कुछ भी हो सकता है।

अब ये तो स्पष्ट है, प्रत्यक्ष है कि हमारा जन्म तो प्रकृति की दिशा में ही हुआ है। मनुष्य का जन्म तो प्राकृतिक घटना ही है ना? पर प्रश्न ये है कि जब प्रकृति हमें जन्म दे रही है तो हम प्रकृति के विपरीत दिशा में यानिकि पूर्ण मृत्यु में, या पूरी जड़ता में जाने का प्रयास क्यों कर रहे हैं? हममें से एक बड़ा वर्ग पूरे समाज को सदियों से अंत की ओर अग्रसर करने में क्यों अपना पूरा श्रम कर रहा है? अब ये अलग बात है कि हमें इसमें कोई सफलता नहीं मिली है। अध्यात्म के नाम पर हम अपने आपको पूर्ण मृत्यु की ओर क्यों धकेल रहे हैं? क्या हम इसलिए जन्में हैं कि जन्म लेने के तुरंत बाद मृत्यु की तैयारी करने लगें और मृत्यु की प्रतीक्षा करें, मृत्यु के लाने के लिए श्रम करें? या धीरे धीरे मृत्यु को लाने के उपाय करें? भले ही बोलते ये रहें कि हम मृत्यु से भी मरते नहीं, हम अजर अमर हैं, अविनाशी हैं। और फिर मृत्यु की तैयारी भी करते रहते है। हम ये चिंतन ही नहीं करते कि हम जन्म लेते हैं, जीवन जीते हैं और फिर मृत्यु को प्राप्त करते हैं। तो जन्म और मृत्यु के बीच इस **जीवन** का भी तो कोई उद्देश्य होगा? नहीं तो ये अजर, अमर, अविनाशी इस जन्म, जीवन और मृत्यु से गुजरता क्यों है? इस पूरी श्रंखला में कुछ तो ऐसा होगा ना जोकि हमें केवल जन्म, जीवन और मृत्यु से ही प्राप्त होता होगा? कहीं और से प्राप्त होना संभव नहीं होता होगा? इतना बड़ा संसार जिसका कि कुछ ओर छोर दिखाई नहीं पड़ता, आखिर ये क्या केवल इसलिए बनाया गया है कि यहां जन्म लो और पूरा

जीवन इस बात की साधना करते रहो कि कैसे इस संसार से मुक्ति हो? बड़ा ही अतार्किक लगता है मुझे तो भाई ये हमारे दर्शनों का निर्णय।

क्या ये संसार इसलिए बनाया गया है कि बस जन्मों, मृत्यु की आशा में जियो और फिर मरो? क्या इस संसार में जन्म लेना, मृत्यु की तैयारी करने के लिए है? और फिर मृत्यु को प्राप्त हो जाना ही जीवन का उददेश्य है? तो जीवन का समय इतना लम्बा क्यों किया गया है? इतने समय में तो लाखों बार जन्म मृत्यु हो सकते हैं। या कि इस जन्म और मृत्यु के बीच जो जीवन है उसका उद्देश्य कुछ और ही है? जिसकी तरफ अभी तक हमने सही से चिंतन ही नहीं किया है? इस प्रश्न पर हमें चिंतन करना चाहिए कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य क्या है। और फिर उसमें व्यक्तिगत रूप से हमारा क्या उददेश्य है। आखिर आत्मा ने अपने आपको इन तीन पादों(जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) में क्यों अभिव्यक्त किया और चौथे पाद में अव्यक्त किया? फिर इसमें इन चारों पादों के अपने अपने क्या कार्य हैं और इनका परस्पर क्या संबंध है? कैसे इनको सही रूप से विकसित किया जाये? आदि। जीवन के उद्देश्य पर चिंतन मनन के लिए आप मेरी लिखी पुस्तक '**मेरी जीवन यात्रा**' का अध्ययन कर सकते हैं जोकि इस पुस्तक के बाद प्रकाशित होगी। उसमें मैंने विस्तार से बहुत बार इसी प्रश्न पर विभिन्न लोगों से चर्चा की है।

यहां अब हम लोग एक एक करके आत्मा की इन चारों अवस्थाओं में प्रवेश करना सीखेंगे और फिर प्रवेश करके उनका अध्ययन करेंगे और उन्हें समझेंगे और समझने के बाद स्वयं भी लाभ लेंगे और औरों को भी लाभ का विकल्प बनेंगे। और ये बात भी समझ लें कि ये ज्ञान भी और दूसरे ज्ञानों की तरह ही है। ऐसा नहीं है कि इस ज्ञान का केवल उनको ही लाभ होता है जोकि इसे जानते है बल्कि उनको भी लाभ होता है जोकि इसे नहीं जानते पर उस ज्ञान आधारित व्यवस्था में निवास करते हैं। उदाहरण के लिए जिन लोगों ने लोकतंत्र को जाना तो उन्हें उसके ज्ञान से एक समाधान के रूप में संतोष प्राप्त हुआ और ये कल्पना करके भी सुख हुआ कि जब ये लोकतंत्र समाज में आयेगा तो सभी लोगों को जोकि इसे समझते हों या नहीं समझते हों परंतु उन्हें समाधान की प्राप्ति होगी और वे आज से अधिक सुखी जीवन जीयेंगे। और ऐसा हुआ भी है, जहां भी ये लोकतंत्र है वहां सभी लोगों को पहले की अपेक्षा कुछ ना कुछ सुख में वृद्धि हुई है चाहे वे इस लोकतंत्र का ज्ञान रखते हों या नहीं रखते हों। हां कुछ नयी समस्याएं उत्पन्न हो गयी हैं अभी जिनका समाधान नहीं है। हम कह सकते हैं कि समाज में कोई ज्ञान एक बार आ जाये और उसका उपयोग होने लगे तो सबको लाभ होने लगता है चाहे उस ज्ञान को कोई जानता हो या ना जानता हो। उदाहरण के लिए बिजली का ज्ञान नहीं हुआ था तो सभी इसके लाभों

से वंचित थे परंतु एक मनुष्य ने इसका ज्ञान किया फिर व्यवस्था वालों ने इस बिजली का महत्व समझा और उसे व्यवस्था का अंग बनाया। उसके बाद से व्यवस्था इसको जहां तक भी पहुंचा पा रही है वहां तक सभी लोग इसका लाभ ले पा रहे हैं जबकि उनमें से अधिकतम लोग बिजली का वैज्ञानिक ज्ञान बिलकुल नहीं रखते। तो ऐसा ही व्यवस्था का ज्ञान भी है। मैंने ऐसी व्यवस्था को एक पुस्तक में लिख दिया है जिसका नाम **सम्पूर्ण समाधान** है जोकि प्रकाशित हो चुकी है। जिसके आने से ये सब हो जायेगा जोकि आप इस पुस्तक में पढ़ रहे हैं कि सभी की सम्पूर्ण कामनाओं को पूरा किया जा सकता है वो भी बिना किसी को कोई भी दुख दिये। बल्कि इस प्रकार से सभी की कामनाओं को पूरा किया जा सकेगा, कि सभी को इससे सुविधा ही होगी।

अवस्थाओं में प्रवेश

अब हम कैसे इन अवस्थाओं में प्रवेश करें और इन अवस्थाओं को जानें, इसपर चिंतन मनन करते हैं। तत्पश्चात् ईच्छानुसार अपने जीवन में उनका उपयोग कर सुखी होवें। जोकि हम सबके जीवन का उद्देश्य भी है और मेरे लिखने का उद्देश्य भी यही है कि हम सब सुखी हों सकें।

धीरे धीरे अच्छे से समझते हुए इन अवस्थाओं में प्रवेश करने का प्रयास करेंगे। हम सभी ने अपने जीवन में ये अनुभव किया होगा कि ज्ञात स्थान में हम सरलता से प्रवेश कर जाते हैं और समय भी कम लगता है। क्योंकि वहां का अधिकतम ज्ञान हमें रहता है। और यदि हमें किसी अज्ञात स्थान में प्रवेश करने को कहा जाये तो उसमें हमें काफी कठिनाई हो जाती है। और समय भी अपेक्षाकृत अधिक लगता है। इसीलिए इन अवस्थाओं में भी प्रवेश करने से पहले इनके बारे में जितना भी संभव हो सकता है उतना ज्ञात कर लेना लाभकारी रहेगा। एक एक चरण को अच्छे से समझते हुए चलेंगे और फिर उसका अनुभव करते चलेंगे बिल्कुल विज्ञान की कक्षा के अनुसार। जैसे विद्यालय में पहले सैंद्धांतिक अध्ययन होता है और फिर प्रयोगात्मक अध्ययन होता है। उसी प्रकार इसमें पहले सैंद्धांतिक अध्ययन करेंगे और फिर प्रयोगात्मक अध्ययन करेंगे। इसी प्रकार करते चले जायेंगे। एक बात और ध्यान में रख लेनी चाहिए। कि यहां हम चारों अवस्थाओं के ज्ञान की बात ही करेंगे, इनके विज्ञान में नहीं जायेंगे। इन अवस्थाओं में दोनों प्रकार से प्रवेश किया जा सकता है और दोनों प्रकार के अपने अपने अलग अलग महत्व और उपयोगिता है। यहां विज्ञान से अर्थ है आधिभौतिक विज्ञान, आधिदैविक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान। तो विज्ञान में प्रवेश करने के लिए तो मनुष्य का चेतनात्मक स्तर का होना अनिवार्य है। इसके पहले ना तो उसमें इसकी ईच्छा होती है और ना योग्यता। हां ज्ञान के माध्यम से अवश्य ही सभी अपनी अपनी ईच्छा और योग्यता से भी एक सीमा तक समझ सकते हैं। उसी का हम लोग यहां प्रयास करेंगे।

जाग्रत अवस्था में प्रवेश

पहले प्रथम अवस्था जाग्रत को लेते हैं। इसके बारे में आप उपर समझ चुके होंगे फिर भी इसकी याद को ताजा करने के लिए दोबारा मैं यहां दे रहा हूं।

जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ।। 3 ।।

जाग्रत अवस्था, जो बहिप्रज्ञ(बाहर का ज्ञानी यानिकि जाग्रत अवस्था का ज्ञाता) सात अंगों(सिर, दोनों कंधे से हाथ तक, छाती, पेट, दोनों कूल्हे से पैर तक) वाला, उन्नीस मुखों(पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण एवं अंतःकरण चतुष्टय यानिकि मन बुद्धि चित्त और अहंकार) वाला और स्थूल(पांच विषयों) का भोक्ता है, वह वैश्वानर पहला पाद है।

जैसा कि सूत्र में बताया है कि इस अवस्था में हम सब बहिप्रज्ञ होते हैं अर्थात् हम बाहर के ज्ञानी होते है। बाहर के भोक्ता होते हैं। अर्थात् इसमें सारा लेना देना बाहर से ही होता है। इस बात को ध्यान रखने की जरूरत है कि इस अवस्था के ज्ञान का अर्थ होगा बाहरी ज्ञान से। ये बाद में काम आयेगा। इस अवस्था के जानने से क्या परिणाम आता है ये सूत्र नीचे बता रहा है।

जागरितस्थानो वैश्वानरो अकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ।। 9 ।।

जिसका जाग्रत स्थान है। वह वैश्वानर व्याप्ति और आदिमत्व के कारण पहली मात्रा अकार है। जो उपासक इसप्रकार जानता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

इसमें हमें अपने और दूसरों के व्यवहार का अध्ययन करना होता है। साथ में प्रकृति का भी जितना अध्ययन कर सकें बाहरी तौर से, करना होता है। इससे पहले संबंधित पुस्तकों का अध्ययन करते हैं फिर उसके बाद स्वयं का बाहरी तौर से अध्ययन करते हैं। और जो भी समझ में आता है, उस समझ के आधार से जीवन को जीना होता है। यदि हम ऐसा करते हैं तो ही हमें अगले स्तर का ज्ञान प्राप्त होने की योग्यता आयेगी और हम उस अगले स्तर के ज्ञान को प्राप्त कर सकेंगे। अगला स्तर अर्थात् फिर हम अंदर के ज्ञाता होने की योग्यता प्राप्त कर सकेंगे।

सभी अवस्थाओं में अनेकानेक स्तर होते हैं। इन स्तरों का ज्ञान तभी होता है जबकि हम प्रत्येक ज्ञान को जीना प्रारम्भ करते हैं। यदि ये सब किसी ऐसे मनुष्य के सानिध्य में किया जाये जोकि पहले से ये सब कर चुका है तो हमें इसे पूरा करने में अल्प समय लगता है। अन्यथा तो पूरा जीवन भी कम पड़ सकता है केवल एक ही अवस्था में प्रवेश के लिए। लेकिन फिर भी यदि स्वयं भी करना चाहो तो भी कर सकते हो। पुस्तकें भी यदि सही हैं तो बहुत सीमा तक मार्गदर्शन करती हैं। ऐसा करते करते हमें इस जाग्रत अवस्था का ज्ञान होना प्रारम्भ हो जाता है।

जब हम स्वयं के व्यवहार का विभिन्न परिस्थितियों में अध्ययन करने लगते हैं, जैसेकि उदाहरण के लिए कब हम दूसरों से सच या झूंठ बोलते हैं, और क्यों बोलते हैं। इसका अध्ययन करके देखते हैं। इस उदाहरण में पहले हम उस परस्थिति को जानेंगे कि वो कौनसी है। जैसे उदाहरण के लिए आपसे कोई उधार मांगने आया है और आप उसे उधार देने की ईच्छा नहीं रखते किसी भी कारण से। तो ऐसी अवस्था में आप झूठ बोल देते हैं कि आपके पास धन नहीं है। लेकिन आप जानते हैं कि आपके पास धन तो है लेकिन आप उसे देना नहीं चाहते। तो ये एक परिस्थिति हुई जिसमें आपने झूठ बोला। अब इसका अध्ययन करते हैं समाज में किस नियम अथवा किस कारण से ऐसी स्थितियां खड़ी हो जाती है कि ना चाहते हुए भी झूठ बोलना पड़ता है। इसीप्रकार आपके चलने का ढंग कैसा है, आपके बोलने का ढंग कैसा है, बोलते समय क्या आपको ज्ञात रहता है कि आप आवश्यकता से कम अथवा अधिक तो नहीं बोल रहे हैं, या आप तो पर्याप्त बोल रहे हैं परंतु सामने वाला उसमें रूचि ले रहा है कि नहीं, कहीं ऐसा तो नहीं कि आपको बोलने में रूचि है परंतु सामने वाले को उसे सुनने में कोई रूचि नही, लेकिन वो किसी और कारण से ऐसा दिखा रहा है कि वो आपकी बात को सुन रहा है जबकि वास्तव में वो ध्यान से सुन नहीं रहा होता। आपकी पसंद और नापसंद कौनसी है। क्या आपकी पसंद नापसंद बदलती रहती हैं। या कुछ पसंद तो समान्यतः नहीं बदलती परंतु कुछ निरंतर बदलती रहती हैं। कौन कौन लोग हैं जो आपको अधिकतम पसंद करते हैं। अध्ययन के लिए कौन से विषय हैं जिनमें आपको अधिक रूचि है। भोजन में आपको सामान्यतः और विशेष तौर पर क्या पसंद है और क्या है जोकि आप बिल्कुल भी पसंद नहीं करते। कौनसा रंग पसंद है। किस प्रकार के कपड़े पसंद हैं। किस प्रकार के संबंध आपको अधिक पसंद हैं। माता पिता के साथ आपके कैसे संबंध हैं। दूसरों से भी आपके किस प्रकार के संबंध हैं। क्या वो संतुष्टिदायक हैं आपके लिए या उनके लिए। क्या आपको अधिक साफ सफाई के साथ रहना पसंद है। क्या आपको उन लोगों के साथ रहने में कोई असुविधा होती है जोकि कुछ विशेष साफ सफाई से नहीं रहते। क्या आपकी किसी

आदत के कारण लोग आपसे परेशान तो नहीं रहते। कहीं आप अपनी किसी आदत के कारण लोगों का अपमान तो नहीं कर देते हो जाने अनजाने। आप अपने लिए किस प्रकार का भविष्य चाहते हो। और जो चाहते हो क्या वो मौजूदा स्थितियों में संभव हो सकता है या कि कोई असंभव प्रकार की चाहत तो नहीं रखते हो। कोई इसप्रकार की तो आदत नहीं है जोकि आपको लगता हो कि अच्छी है परंतु हमारी उस आदत के कारण हमारे अपनो से संबंध अच्छे नहीं रह पाते। आपसी संबंधों में अशांति बनी रहती है लेकिन हम अपनी कुछ तथाकथित आदतों को इसलिए बनाये रखते हैं क्योंकि हमारे कुछ बड़े बुजुर्ग या गुरू लोग कहते आये हैं कि वो आदत बहुत अच्छी होती है। कहीं हमारे अंदर किसी बात की कोई अनावश्यक अति तो नहीं है। कहीं हम अंधविश्वासी तो नहीं हैं। कहीं हम किसी धर्म के प्रति ऐसे तो कट्टर नहीं हैं कि जिससे उस धर्म को ओरों पर थोपने का प्रयास जाने अनजाने करते हों। क्या हमारे धर्म की जिन बातों को हम पालन करते हैं या पालन करने का प्रयास करते हैं क्या वो सही हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि उनके कारण ही कोई समस्या हमारे जीवन में पैदा हो रही हो या हमारे द्वारा किसी और के जीवन में कोई समस्या पैदा हो रही हो। या कोई भी अपनी पसंद को किसी और पर तो नहीं थोप रहे हम। जो बात हम अपने लिए नहीं चाहते दूसरो से, कहीं ऐसा तो नहीं कि वो हम दूसरो पर लादने का प्रयास कर रहे हों। कहीं हम किसी दुख में तो कोई सुख खोजने का प्रयास नहीं कर रहे हैं ना। हमारे कारण कहीं दूसरे जीवों को तो कोई कष्ट नहीं हो रहा है। कहीं हम किन्ही साधू संतों की ऐसी तो कोई बात नहीं मान रहे ना जोकि हमारे दुखों का या हमारे द्वारा दूसरों के दुखों का कारण बन रही हो। या साधू संतों की ऐसी तो कोई बात जोकि हमें माननी चाहिए जिससे कि हमारा जीवन सुखमय हो सकता है और किसी कारणवश हम नहीं मान रहे हों। क्या दूसरों को दुखी देखकर हमें सुख का अनुभव होता है या कि हमें भी उनकी तरह ही दुख का अनुभव होता है। क्या हमारे अंदर ऐसी कोई ईच्छा होती है कि इस संसार में सब सुखी हों। या किन्हीं अपनो के लिए हमारे अंदर ऐसी भावना होती है कि वो सब सुखी रहें, उनको कभी कोई दुख ना हो। हमारा कोई भी ऐसा व्यवहार तो नहीं जिससे दूसरे लोगों को समस्या होती हो आदि आदि। इसप्रकार से बाहय रूप से अपने आपको पूरी तरह से जान लेना कि व्यावहारिक तल पर मैं कौन हूं। अर्थात मेरा व्यक्तित्व क्या है। और किन परिस्थितियों में मैं किस प्रकार से व्यवहरित होता हूं अपने साथ और दूसरों के साथ। दूसरों में मनुष्य ही नही बल्कि पशु पक्षी आदि के साथ भी। तो इस प्रकार से अपने आपको पूरी तरह से जितना भी हो सकता है अपने आपको बाहर से अपने व्यवहार के आधार पर जानने का प्रयास करना चाहिए। इसी प्रकार अपने आपको जानने के साथ साथ दूसरों को भी जानने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए

उनके साथ वार्तालाप करना चाहिए। उनसे पूछते रहना चाहिए ताकि आपको उनके बारे में सही से ज्ञान प्राप्त होता रहे कि वो उन परिस्थितियों में कैसा अनुभव करते हैं। दूसरों से अपने बारे में भी चर्चा करते रहना चाहिए कि वो आपके बारे में कैसा अनुभव करते हैं। क्या उन्हें आपसे सुख प्राप्त होता है अथवा कोई दुख तो वो प्राप्त नहीं करते आपसे। सभी आयु के बच्चों को और लोगों को इस प्रकार जानने का प्रयास करना चाहिए। प्रकृति का अध्ययन करते रहना चाहिए। विशेषरूप से दूसरे जीव जंतुओं का कि वो भिन्न परिस्थितियों में कैसे व्यवहार करते हैं। इसके साथ विज्ञान आदि का भी जो अध्ययन कर सको तो वो भी इसमें सहायक रहता है। ऐसा करते करते आप अपने बारे में और दूसरों के बारे में बहुत कुछ जान जाओगे। और उस बहुत कुछ से ये भी जान जाओगे कि कोई भी मनुष्य या जीव किन परस्थितियों में किस प्रकार से व्यवहार करता है और वैसा ही व्यवहार क्यों करता है। कुल मिलाकर आप मनुष्य की जाग्रत अवस्था के ज्ञाता होते चले जाते हैं। ऐसा होने से आप बहुत सारी ऐसी घटनाओं को होने से रोक लेते हो जिनसे कि आपको अथवा आपसे दूसरों को दुख उत्पन्न होता है। और ऐसी बहुत सारी धटनाओं को आप जन्म देते रहते हो निरंतर जिससे कि आपको अथवा आपके द्वारा दूसरों को सुख उत्पन्न होता रहता है। चाहे बाहर व्यवस्था गलत ही क्यों ना हो। इसी कारण से कुछ लोग अपने आपको और दूसरों को सुधारने पर इतना बल देते रहते हैं। उनको लगता है कि अपने आपको इस प्रकार का बना लेने से वो कुछ दुखों को तो कम कर ही सकते हैं। और ये उनका मानना सही ही होता है क्योंकि इसप्रकार के कई उदाहरण हैं कि लोग त्याग, बलिदान और नैतिकता पर चलकर बहुत प्रकार के दुखों से बच जाते हैं। हालांकि ये सदैव सत्य नहीं होता। कभी कभी तो इसी नैतिकता के कारण मनुष्य अधिक कष्टों को भी पाता है। परंतु फिर भी यदि समाज में व्यवस्था अधिक खराब नहीं है तो ये नैतिकता को पालने से कुछ दुख उत्पन्न नहीं होते। सही व्यवस्था होने पर सारी नैतिकता अपने आप लोगों में आ जाती है उसके लिए अलग से कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। और यही किसी व्यवस्था की कसौटी भी होती है कि जब पूरा समाज स्वभाविकरूप से नैतिकता का जीवन जीने लगे बिना उपदेश दिये तो समझना चाहिए कि पूर्णरूप से सही व्यवस्था आ चुकी है। अन्यथा तो व्यवस्था में सुधार करते रहना चाहिए।

तो जाग्रत अवस्था को हम इसप्रकार से जान सकते हैं। इसके लिए कुछ प्रक्रियाएं भी हैं जिनका हम उपयोग कर सकते हैं। जैसे कि हम सोते समय योगनिद्रा का उपयोग कर सकते हैं। इसके प्रयोग में जब हम अपने स्थूल शरीर के प्रति सचेत रहने का अभ्यास करते रहते हैं तो इससे क्या होता है कि जब भी हमें कोई तीव्र अथवा धीमा

संवेदन होता है शरीर में तो उसका ज्ञान होने लगता है। और ये संवेदन प्रेम के, आकर्षण के, विकर्षण के, भय के, लोभ के, मोह के, क्रोध के, असम्मान अथवा सम्मान के, किसी भी प्रकार के सुख अथवा दुख आदि के होने लगते हैं। तो उस समय हम इनके माध्यम से ये जानते रहते हैं कि ये कौनसी वेदना है और किस कारण से उन्पन्न हो रही है। जब हम किसी भी विषय के संपर्क में आते हैं तो कौनसी वेदना हमारे अंदर होती है। और वो वेदना सुखवेदना है कि दुखवेदना है, ये भी ज्ञान होता है। फिर ये भी ज्ञात होने लगता है कि हम सुखवेदना वाले विषयों की बार बार ईच्छा करने लगते हैं। और दुखवेदना वाले विषयों से दूर रहने की ईच्छा करने लगते हैं। अर्थात् सुख देने वाले विषयों से राग करने लगते हैं और दुख देने वाले विषयों से द्वेष करने लगते हैं। किस कारण से हम दूसरे लोगों के साथ उनको सुख देने वाला व्यवहार करते हैं और किस कारण से हम उनको दुख देने वाला व्यवहार करने लगते हैं। किस कारण से इससे संबंधित विचार और आचार हम करने लगते हैं। इस प्रकार से हम अपनी जाग्रत अवस्था के बारे में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करते चले जाते हैं। और एक दिन ऐसा आता है कि हम अपनी दूसरी अवस्था स्वप्न में प्रवेश के लिए पूरी तरह से तैयार हो जाते हैं, वो भी जाग्रत अवस्था के ज्ञान के साथ। ऐसे तो दूसरी अवस्था में, जाग्रत अवस्था के ज्ञान के बिना भी प्रवेश कर सकते हैं परंतु उससे दूसरी अवस्था का ज्ञान पाने में बहुत कठिनता होगी। और अधिक संभावना इसी बात की है कि आप वहां कुछ का कुछ समझेंगे जिसके कारण आपको भ्रम की स्थिति बनी रहेगी। और कई प्रकार की मानसिक समस्याओं को भी आप उत्पन्न कर ले सकते हैं। उदाहरण के लिए उसमें आपको भूत प्रेतों के अनुभव होते हैं जिससे अधिकतम लोग भयभीत हो जाते हैं। और इस जाग्रत अवस्था में भी भयभीत अवस्था में जीवन जीने लगते हैं। जिससे हमें और हमारे परिवार को बहुत कष्टों का सामना करना पड़ता है। और इसकी चिकित्सा भी सम्भव नहीं हो पाती है। तो दूसरी अवस्था में प्रेवश करने से पहले यदि जाग्रत अवस्था को सही से समझ लोगे तो दूसरी अवस्था में प्रवेश सरल भी हो जायेगा और सुखकारी भी होगा। तो इस जाग्रत अवस्था में सभी अधिकतम समय व्यतीत करते ही हैं, बस यदि हम अपने शरीर में विभिन्न कारणों से हो रही वेदनाओं के प्रति सजग रहें तो समझो कि आप प्रथम अवस्था का ज्ञान सही से प्राप्त कर रहे हैं। अपने शरीर की संवेदनाओं के प्रति सजग रहते हैं और जो अध्ययन उपर बताया वो करते रहते हैं। ऐसा करते करते एक समय हम प्रथम अवस्था के ज्ञाता हो जाते हैं और उसके ज्ञानस्वरूप इसका लाभ हमें और हमारे द्वारा दूसरों को प्राप्त होता रहता है। और वो लाभ है कि जाग्रत अवस्था में अधिकतम सुखी रहना। अर्थात सभी कामनाओं की प्राप्ति होना। हम सरलता से समझ सकते हैं कि यदि इस प्रकार हम अपना, दूसरों का और प्रकृति का अध्ययन करने लगते हैं तो

इससे हमें ज्ञात होने लगता है कि हमारा सुख किसमें है और हमारा दुख किसमें है। और इस ज्ञान के आधार से हमारा जीवन चलने लगता है। जिसके कारण हम केवल सुख वाले कारणों को ही बार बार दोहराते हैं और दुख वाले कारणों को नहीं दोहराते। और हमारा जीवन अधिकतम सुखी रहने लगता है। धीरे धीरे दुखों की कमी होती चली जाती है। इसप्रकार एक समय आता है कि जब हमारा जीवन केवल और केवल सुखमय होता है। सही व्यवस्था जोकि पूर्व के ज्ञानियों के कारण आयी होती है उसमें सभी स्वभाविकरूप से सुखी रहते ही हैं। तो सही व्यवस्था में आपको केवल इस जाग्रत अवस्था के ज्ञाता होने का सुख ही अलग से मिलता है, क्योंकि बाकि तो सारे सुख आप ले ही रहे होते हैं। तो ये रहा प्रथम अवस्था में प्रवेश करने का उपाय। बाकि जो उपर बताया गया है कि जो भी इस जाग्रतावस्था को जान लेता है तो उसकी सभी ईच्छाएं पूर्ण होती हैं, ये बात आधिभौतिक विज्ञान के बारे में है जोकि वैज्ञानिक स्तर के मनुष्य ही कर पाते हैं। जैसे जैसे वो आधिभौतिक विज्ञान को जानकर समाज को देते रहते हैं वैसे वैसे समाज इस विज्ञान के द्वारा अपनी ईच्छाओं की पूर्ति करता रहता है। तो जो मैं उपर बता रहा हूं इस जाग्रतावस्था के ज्ञान के बारे में, वो मैं व्यावहारिक ज्ञान की बात कर रहा हूं नाकि विज्ञान की। क्योंकि वैज्ञानिक तो विज्ञान की खोज में लगे ही हैं। अब जैसे मैंने इस नयी व्यवस्था की खोज कर दी जिसमें ये सारे ज्ञान और विज्ञान को अत्यधिक गति मिल सकेगी। क्योंकि इस नयी व्यवस्था में सभी लोग अपनी ईच्छा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे, अपनी ईच्छा का कर्म यानिकि रोजगार प्राप्त कर सकेंगे और अपनी ईच्छा का भोग प्राप्त कर सकेंगे। अपनी ईच्छा का जीवन होने के कारण जो भी लोग वैज्ञानिक बनेंगे, वो लोग पूरी गहराई से अपने विषयों में अधिकतम समय लगे रहेंगे जिसके कारण बहुत ही शीघ्रता से सारे ज्ञान और विज्ञान की खोज हो जायेगी। और सभी की संपूर्ण ईच्छाओं को पूर्ण किया जा सकेगा। लेकिन जबतक ये नहीं हो पाता तो तबतक सभी अपनी योग्यतानुसार इस जाग्रतावस्था को जानकर हम अपने कई दुखों को पैदा होने से रोक सकते हैं और हमसे जो ओरों को दुख पहुंचते हैं, उनको भी रोक सकते हैं। साथ ही अपने और दूसरों के बहुत सारे सुख बढ़ाते रह सकते हैं।

स्वप्न अवस्था में प्रवेश

वैसे तो आप स्वप्नावस्था को समझ चुके होंगे लेकिन याद को ताजा करने के लिए नीचे दिये गये सूत्र को एक बार देखें। पहले हम अवस्था को समझने का प्रयास कर चुके हैं और अब इस अवस्था में प्रवेश करने की दृष्टि से समझने का प्रयास करेंगे। किसी भी अवस्था में प्रवेश करने के लिए छोटी छोटी बातों का भी बड़ा ध्यान रखने की जरूरत होती है। कई बार छोटी सी बात को ना समझने के कारण बहुत लम्बे समय तक उसी स्थान में अटके रह सकते हैं। आओ याद ताजा करें।

स्वप्नस्थानो अन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ।। 4 ।।

स्वप्न जिसका स्थान है तथा जो अंतःप्रज्ञ(अंदर का ज्ञाता), सात अंगों(सिर, दोनों कंधे से हाथ तक, छाती, पेट, दोनों कूल्हे से पैर तक) वाला, उन्नीस मुखों(पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण एवं अंतःकरण चतुष्टय यानिकि मन बुद्धि चित्त और अहंकार) वाला और सूक्ष्म(पांच विषयों) का भोक्ता है, वह तैजस दूसरा पाद है।

इस सूत्र से पता चलता है कि हम अंदर के ज्ञाता और भोक्ता भी हैं जैसेकि हम बाहर के ज्ञाता और भोक्ता हैं। और ये अवस्था बिल्कुल बाहर की अवस्था के समान ही है लेकिन अंतर ये है कि बाहर में स्थूल का ज्ञान होता है और अंदर में सुक्ष्म का। तो केवल स्थूल और सुक्ष्म का ही अंतर है बाहर में और अंदर में। तो इसका अर्थ हमें उन्हीं बातों का सुक्ष्मरूप से अध्ययन करना होता है जिनका कि हमने बाहयरूप से स्थूलरूप से किया था। अर्थात् स्वयं का और प्रकृति का आंतरिक यानिकि सुक्ष्मरूप से अध्ययन करना होता है। और ये सारा अध्ययन स्वप्न में जगे हुए प्रवेश करके करना होता है।

अब इस अवस्था के ज्ञान से क्या परिणाम प्राप्त होता है उसके बारे में बताया जा रहा है। इसे भी समझ चुके होंगे। यहां केवल समझ को ताज़ा करने के लिए ही इस सूत्र को दोबारा दे रहा हूं। इस परिणाम से अपने आपको जांचते भी रहेंगे कि क्या ये परिणाम आपको आपकी स्थिति के आधार पर प्राप्त हो रहा है कि नहीं।

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ।।10।।

स्वप्न जिसका स्थान है, वह तैजस उत्कर्ष तथा मध्यवर्तित्व के कारण द्वितीय मात्रा उकार है। जो उपासक ऐसा जानता है, ज्ञान संतान का उत्कर्ष करता है, सबके प्रति समान होता है और उसके कुल में कोई ब्रहमज्ञान हीन नहीं होता।

इसका अर्थ है कि इस अवस्था को जानने वाला मनुष्य या समाज सभी को समानरूप से देखता है और उसीप्रकार से व्यवहार करता है। क्योंकि उसको ये ज्ञान हो जाता है कि जैसा मैं हूं वैसे ही दूसरे भी हैं।

जब भी हमारे साथ कोई भी धटना हो उसे आंतरिकरूप से समझने का प्रयास करते रहना चाहिए। बाहर की घटना से आंतरिक स्थिति में क्या परिवर्तन हो रहे हैं और इससे हमारे स्वप्नों पर क्या प्रभाव होते हैं उन्हें भी जानते रहना चाहिए। बाहर की घटनाओं के आधार से ही हमारी अंदर की स्थितियां और हमारे स्वप्न निर्मित होते हैं। इसप्रकार दोनों अवस्थाओं का ज्ञान भी होने लगता है और इन दोनों अवस्थाओं का आपस में क्या संबंध है, ये भी ज्ञात होता जाता है। इसप्रकार हम बाहर के ज्ञाता होने के साथ–साथ अंदर के ज्ञाता भी होते जाते हैं। और अंदर के ज्ञाता होने के साथ साथ बाहर के ज्ञान प्रमाणिक भी होने लगते हैं। जिससे हमारा ज्ञान और अधिक प्रगाढ़ होने लगता है। हमारे पास तर्ककोष में तर्कों की संख्या बढ़ने लगती है। इन तर्कों के माध्यम से हम स्वयं भी गहरे ढंग से समझने लगते हैं और दूसरों को भी अच्छे से अपनी बात को प्रमाणितरूप से रख पाते हैं। और दूसरे भी बिना इसमें विशेष मेहनत किये आसानी से आपकी बात को प्रमाणिकरूप से समझ पाते हैं। हालांकि वो कुछ ही दृष्टियों से समझ पाते है जबकि आप उस बात को बहुत सारी दृष्टियों से समझ रहे होते हैं। और ये बहुत सारी दृष्टियों में जानने से ही आपकी बातों में गहराई आती है। दूसरे लोगों को समझने में आसानी भी होती है। और जैसे ही आप अपने आपको गहराई से समझते जाते हो वैसे ही दूसरे को भी समझने लगते हो। क्योंकि मूलतः हम सब तात्विकरूप से एक ही जैसे हैं। जैसे आपके अंदर होता है वैसे ही दूसरों के अंदर भी होता है। और इसको ही अंतरायामी होना कहते हैं अर्थात् आप अंदर की अवस्था के या प्रक्रियाओं के ज्ञानी होते जाते हो, अंदर की अवस्था के जानने वाले होते जाते हो। आपके अंदर में क्या प्रक्रियाएं चल रही हैं इस सबको जानना ही अंदर के ज्ञान को उपलब्ध हो जाना है।

स्वभाविकरूप से जैसे ही हमारी जाग्रति जाग्रतावस्था में पूर्ण हो जाती है वैसे ही हमारी स्वप्नावस्था जाग्रत होने लगती है। अर्थात स्वप्नावस्था में जो भी क्रियाकलाप होते हैं उन्हें हम जागते हुए अनुभव करने लगते हैं और समझने लगते हैं कि वो क्या हैं और क्यों चल रहे हैं। उनके चलने से क्या होता है। हमारे जीवन में उनका क्या

स्थान है। कैसे वो हमारे लिए सुख का अथवा दुख का साधन बन रहे हैं आदि आदि। हम स्वप्नावस्था को जाग्रतावस्था की भांति ही अनुभव करने लगते हैं।

इसमें प्रवेश करने के लिए शवासन में लेट जाएं। पैरों की ओर से अपने सभी अंगों को बारी बारी से शिथिल करने का भाव करते हुए सिर की ओर आना होता है। एक अंग पर ना तो अधिक समय व्यतीत करना है और ना ही बहुत तेजी से निकल जाना है। गति इसप्रकार से रखनी है कि शरीर तो विश्राम में जाये परंतु हम यानिकि चेतन जोकि विभिन्न अंगों पर ध्यान कर रहा है, जागा रहे। तो मध्यम गति रखनी है। क्योंकि यदि गति तेज रखेंगे तो हमारा शरीर विश्राम में नहीं जायेगा और यदि गति बहुत मंद रखेंगे तो हम स्वयं भी शरीर के साथ निद्रा में चले जायेंगे। जबकि उद्देश्य है शरीर को निद्रा में भेजने का और स्वयं को जगाये रखने का। जिससे कि स्वप्न में जागे हुए हम प्रवेश कर सकें। इस प्रक्रिया को करने से पहले स्थान, गद्दा, मच्छरदानी, कमरे का तापमान आदि इस प्रकार से जांच लेना चाहिए, कि ये प्रक्रिया कम से कम ढेड़ घंटे तक बिना किसी हलन चलन के कर सकें। जिसमें शरीर का कोई भी अंग हिलना नहीं चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि गद्दा ऐसा हो कि इतना समय शरीर में कहीं दर्द इत्यादि ना होने पाये। तापमान भी ऐसा हो जिससे शरीर में कोई समस्या ना अनुभव हो गर्मी अथवा सर्दी से। मच्छर, मक्खी आदि ना हों। वहां शोरगुल ना हो। अर्थात् सबकुछ ऐसा हो जिससे कि इस ध्यान के समय किसी भी प्रकार की समस्या आपको ना आये। इस दोरान खान पान भी ऐसा हो कि वो कोई समस्या पैदा ना करें शरीर में, जैसेकि गैस या बहुत अधिक भोजन खा लेना, या बहुत भारी भोजन खा लेना आदि आदि। कुल मिलाकर ध्यान ये रखना है कि बिना किसी समस्या के शरीर ढेड़ या दो घंटे तक शवासन में रह सके। और थके हुए नहीं होने चाहिए, नहीं तो शरीर के साथ साथ आपके भी निद्रा में जाने के अवसर बढ़ जायेंगे। इस प्रक्रिया को आप विश्राम के लिए भी प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रक्रिया के द्वारा निद्रा भी स्वस्थरूप से आयेगी। वो सुखकारी होगी सामान्य निद्रा से। जब हम इस प्रक्रिया का अभ्यास करेंगे तो विभिन्न प्रकार के नये नये अनुभव नित्य प्रतिदिन होने लगते हैं। फिर इन अनुभवों को समझने का प्रयास करना होता है। इनके कारणों को समझना होता है। सभी अनुभवों का आपस में क्या संबंध है, ये भी साथ साथ समझते रहना होता है। यदि खुद से समझ ना आये तो इस विषय के ज्ञानी लोगों से चर्चा करके इसे समझते रहना चाहिए। यदि खुद से समझ में आ भी जाये तो भी ज्ञानियों से चर्चा अवश्य करनी चाहिए। कई बार ज्ञानी लोग ऐसी बाते भी चर्चा करते हुए बता देते हैं जिससे कि साधना में गति तेज हो जाती है और अनुभव जल्दी ही समझ में आ जाते हैं और वो हमारा ज्ञान बन जाते हैं। हम लोग भी संस्था के अंर्तगत इस

प्रकार के छोटे या बड़े अवधि के शिविर का आयोजन लोगों की मांग के अनुसार करते रहेंगे। जिससे कि सभी साधकों को या जो लोग सामान्यरूप से भी जानना चाहते हैं तो उन सबको लाभ मिलता रह सके।

इस प्रक्रिया में भूत जैसे भी अनुभव हो सकते हैं, हवा में उड़ रहे हैं या हवा में तैर रहे हैं, ऐसे अनुभव भी हो सकते हैं। या अंतहीन खाई में लगातार गिरते जा रहे हैं, ऐसा भी अनुभव हो सकता है। स्वप्न में आप मर चुके हैं ऐसा भी अनुभव हो सकता है, अपने स्थूल शरीर से कोई सूक्ष्म शरीर निकल गया है और वो दोनों को यानिकि सुक्ष्म और स्थूल शरीर को देख रहा है जोकि स्वप्न ही होता है। लेकिन लगेगा ऐसा कि जैसे वास्तविक है। लेकिन जब आप इसकी जांच करेंगे तो आपको पता चलेगा कि ये स्वप्न ही था। मुझे इस अनुभव के कई साधक मिले जोकि इस अनुभव को वास्तविक समझ रहे थे। जब मैंने उनसे इसे चैक करने के लिए कहा तो तब जाकर उनको ज्ञात हुआ कि ये तो केवल एक स्वप्न ही था। और कईयों ने तो ये कह कर ही चैक करने से मना कर दिया कि नही हमें ध्यान के अनुभवों को चैक नहीं करना चाहिए नहीं तो ध्यान की प्रक्रिया ही रूक जायेगी। जब मैंने उनसे इसका कारण पूछा तो वो बस ये ही बता पाये कि गुरूदेव का कहना है। अर्थात् कारण उनको ज्ञात नहीं था। कुल मिलाकर बड़ें ही विचित्र अनुभव भी होते रहते हैं। धीरे धीरे इन अनुभवों को समझते समझते आप समझने लगते है कि इन काल्पनिक अनुभवों या स्वप्नों का क्या आधार है। ये अनुभव या स्वप्न हमें किसलिए आ रहे हैं। हमारे अनुभवों या स्वप्नों का आधार शरीर की कोई समस्या से जुड़ा हो सकता है, वातावरण की समस्या से जुड़ा हो सकता है, कोई मानसिक समस्या से जुड़ा हो सकता है। या विभिन्न प्रकार की सुखों की चाह भी आधार हो सकती है। या किसी दुख से बचना चाह रहे हो, ये आधार भी हो सकता है। मरे हुए लोगों से मुलाकात और चर्चा का स्वप्न हो सकता है। विभिन्न प्रकार के स्थान और जीव दिखाई दे सकते हैं जोकि वास्तव में नहीं दिखाई पड़ते हमें अपने जीवन में। इसप्रकार से धीरे धीरे आप समझते चलोगे कि इन सभी प्रकार की अवस्थाओं के कारण किस प्रकार के स्वप्न निर्मित होते हैं। इससे हमें ये भी पता चलेगा कि हमारे विश्राम करने के लिए किस प्रकार के वातावरण आदि की आवश्यकता है। तो उस प्रकार का वातावरण पैदा कर हम अपने विश्राम की क्वालिटि को बढ़ा सकते हैं और इसे ध्यान के लिए भी प्रयोग कर सकते हैं।

जब आप जागे हुए स्वप्न में प्रवेश करने में थोड़े अभ्यस्त हो जायेंगे तो फिर आपको अपने स्वप्नों को अपनी ज़रूरत के अनुसार पैदा करने का प्रयास करना चाहिए। इसमें केवल वहां ऐसी ईच्छा करनी होती है कि ऐसा स्वप्न हो जाये तो स्वप्न वैसा ही पैदा होने लगता है। आप अपने स्वप्न से जागने की गति भी कम या अधिक कर सकते

है। जागने की गति को कम करेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि आपके सारे स्वप्न प्रकाश के मेल से ही बन रहे हैं। जैसे एक कलाकार सारी कलाकृतियां रेत से बनाता रहता है। वैसे ही सारे स्वप्न केवल प्रकाश के कणों द्वारा ही बन रहे होते हैं। वहां आप किसी भी प्रकार के भोगों को भोगते रह सकते हैं। और कई बार वहां कुछ ज्यादा ही स्वदिष्ट फल या भोजन खाने का अनुभव भी होता है। वहां के संभोग में और यहां जाग्रति के संभोग में आप कई प्रकार के अंतर पायेंगे। कुल मिलाकर धीरे धीरे बहुत प्रकार के अनुभवों को आप पायेंगे और उनमें जाग्रति के अनुभवों से तुलना भी कर सकेंगे। कई बार ऐसे भी स्वप्न आप देखेंगे कि आप किसी विषय पर चिंतन मनन कर रहे थे जाग्रति अवस्था में और बहुत प्रयास के बाद भी कोई निष्कर्ष नहीं निकल पा रहा था, लेकिन स्वप्न में ऐसा कुछ हुआ कि उस बात का समाधान निकल आया। इससे आपको धीरे धीरे पता चलेगा कि इस अवस्था का वास्तविक उपयोग ज्ञान के लिए ही होता है। फिर हम अपनी उलझनों को सुलझाने के लिए या कुछ ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी इस अवस्था का उपयोग कर सकते हैं। तो इस स्वप्न अवस्था में बहुत प्रकार के हम लोग मजे लेते रह सकते हैं। क्योंकि वहां जिसकी भी हम कल्पना करते हैं, वो वहां तुरंत उपस्थित हो जाती है। तो जितनी भी हम कल्पना कर सकते हैं, वो सब स्वप्न अवस्था में संभव है। और आप ये भी समझ सकते हैं कि जो लोग भूत प्रेत, देवी देवता, गुरू, भगवान आदि के दर्शन करते हैं वो भी इसी अवस्था के कारण कल्पना होने से ही होते हैं। ये सब कल्पनाएं ही होती हैं। इनका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं होता। यहां वास्तविकता से अर्थ है कि जाग्रति अवस्था में जो भी अस्तित्वगत है वो सब वास्तविक है। इसीलिए स्वप्नावस्था में हुए ज्ञान को यहां जाग्रति अवस्था में जांच कर देखना जरूरी होता है। इस जांच से हमें ये ज्ञात हो जाता है कि प्राप्त ज्ञान वास्तविक है या काल्पनिक। अर्थात इस जाग्रति अवस्था में उसका कोई अस्तित्व भी है कि नहीं या कोई उपयोग है कि नहीं। कई काल्पनिक ज्ञान भी इस वास्तविक या जाग्रत अवस्था में हमारे उपयोग के भी होते हैं। उदाहरण के लिए जैसे गणित में गिनतियां होती हैं, ये पूरी तरह से काल्पनिक होती हैं लेकिन बहुत उपयोगी होती है। कहांनिया, सिनेमा, खेल आदि कई प्रकार की कल्पनाएं होती है जोकि उपयोगी होती हैं। और कुछ कल्पनाएं यहां किसी काम की नहीं होती। जैसे चॉद हमारी हथेली पर आ जाये आदि। सभी ज्ञान को उनकी उपयोगिता के आधार से महत्व मिलता रहता है।

ये एक बात तो हम सभी के अनुभव होगी ही कि इस जाग्रतावस्था और हमारी स्वप्नावस्था का निर्धारण हमारे व्यक्तित्व के अनुसार ही होता है। और यदि आपने इस ओर ध्यान नहीं दिया है तो जब आप ये साधना करेंगे तब आप यहीं बात पायेंगे कि

हमारे अन्दर की अवस्था का निर्धारण इस बाहरी अवस्था के अनुसार ही होता है। और बाहर की अवस्था का निर्धारण बाहर की व्यवस्था के कारण होता है। इसीलिए आप देख सकते हैं कि विभिन्न देशों में विभिन्न व्यवस्थाएं हैं। व्यवस्थाओं के कारण ही हर देश में अलग अलग प्रकार की अवस्थाओं का निर्माण होता है। और इन अवस्थाओं के कारण ही हर देश के लोगों के व्यक्तित्व में कुछ छोटे या बड़े अंतर पाये जाते हैं। और साफ समझ सकते हैं कि उनकी अन्दर की अवस्थाएं इन्हीं बाहर की अवस्थाओं के कारण ही लगातार प्रभावित होती रहती हैं। इस साधना को करते हुए आप बहुत गहरे से इन अवस्थाओं का आपसी संबंध समझ पाओगे। और आवश्यकतानुसार इनका उपयोग भी कर पाने में सफल हो पाओगे। और ये भी बहुत ही गहरे से समझ पाओगे कि बाहर की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए जिससे कि आपको अन्दर की अवस्था जैसी करनी है वो वैसी हो सके। और उसी आधार से इस संपूर्ण व्यवस्था को मैंने निर्मित किया है। इसी लिए ये व्यवस्था बाहर जाग्रत अवस्था में वैसी अवस्थाओं का निर्माण कर सकेगी जैसी कि हम चाहते हैं। और चूंकि हमारी ईच्छा के अनुसार ही बाहर में अवस्था का निर्माण होगा तो इस कारण से हम अपने अन्दर में सुखी रहेंगे निरंतर। और चूंकि बाहर में सबकुछ हमारी ईच्छानुसार ही हो रहा होगा, कुछ भी अनावश्यक नहीं होगा इसलिए अन्दर में भी कुछ भी ऐसी अवस्था का निर्माण नहीं होगा जोकि हमें नहीं चाहिए। अंदर कोई भी नकारात्मक अवस्था का या अनावश्यक अवस्था का निर्माण ही नहीं होगा। और उसे ठीक करने के लिए हमें कुछ उपचार जैसा नहीं करना पड़ेगा। और अपना समय हम केवल और केवल उसमें लगा पायेंगे जहां कि हम लगाना चाहते ही हैं। इससे हमारे पास सुखी होने का समय भी पर्याप्त मात्रा में रहेगा। उदाहरण के लिए लगभग हर देश में बजट का 50 प्रतिशत से अधिक धन एवं बहुत सारे लोगों को आर्मी, पुलिस, दूसरे विभिन्न फोर्स विभाग, टैक्स विभाग, जासूस विभाग, चिकित्सा विभाग, बैंकिग विभाग, रिजर्व बैंक, शेयर मार्केट, अनावश्यक परिवहन विभाग आदि में खर्च करना होता है। जिसको कि सही व्यवस्था लाकर समाप्त किया जा सकता है, इस अनावश्यक खर्चे से सदा के लिए बचा जा सकता है। और इस बड़े प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों के दुरपयोग से बचा जा सकेगा। एवं इन सबका उपयोग सुख के संसाधनों को पैदा करने में किया जा सकेगा। साथ ही सबके पास पर्याप्त समय होगा इन सुख के संसाधनों को उपयोग करके सुखी होने का एवं अपने संबंधियों के साथ समय देने का। और भविष्य के प्रति असुरक्षा के तनाव से मुक्त रह सकेंगे सदा ही। क्योंकि किसी को भी अनावश्यक कार्यों में अपना समय खराब नहीं करना पड़ेगा। और ऐसा नहीं है कि इन अनावश्यक कार्यों में केवल वो समय खराब होता है जोकि हम सब इन कार्यों को करने के लिए देते हैं बल्कि सारे समय भयभीत भी रहते हैं कि कहीं कुछ गड़बड़ ना

हो जाये। तो एक तरह से सभी प्रकार की सुरक्षा में समय देते हुए भी कुछ भी गड़बड़ होने की आशंका रहती ही है। तो कुल मिलाकर हमारा सारा समय इसमें खराब ही होता रहता है। और हमारे पास जो भी सुख सुविधा होती है, उसे भी हम डरे हुए से ठीक से उनका उपभोग करके सुखी नहीं हो पाते। तो इसप्रकार से हम सब समझ सकते हैं कि जीवन को संपूर्ण रूप से सुखी होने के लिए सुरक्षा वाला उपाय कुछ खास काम नहीं करता। बस थोड़ा डर कम कर देता है, वो भी इतनी ज्यादा कठिन मेहनत करके जिसमें बहुत लोगों की जान भी लगातार जाती रहती है। सुरक्षा उपायों में सुरक्षा करने वाले और अपराध करने वाले दोनों ही लगातार धन का अपव्यय करते रहते हैं और अपनी जान से भी लगतार हाथ धोते रहते हैं। अर्थात् जान और माल का नुकसान लगातार होता रहता है समाज को। फिर भी सभी प्रकार के भय सदा ही बने रहते हैं, उनसे मुक्ति नहीं मिलती। बल्कि लोग सोचने लगे हैं कि ये भययुक्त अवस्था जीवन का एक आवश्यक अंग है, इससे मुक्ति असंभव है। और इसको केवल कम करने के उपायों पर ही खोज होती रहती है नाकि इससे पूर्ण मुक्ति के उपाय पर।

लेकिन एक ऐसी व्यवस्था जोकि समस्याओं को पैदा ही ना होने दे और सारी सुख सुखसुविधाओं को लगातार सबके लिए ईच्छानुसार पैदा करती रहे, यही एकमात्र सही उपाय है। और **संपूर्ण समाधान** ऐसा ही परिणाम दे सकने वाली व्यवस्था है। अधिक समझने के लिए इस पुस्तक को आप पढ़ सकते हैं और यू ट्यूब पर यूनिवर्सल लाईफ मैंनेजमेंट नाम के चैनल में सुन भी सकते हैं। इसके अलावा वहां इस समाधान को समझाने के लिए बहुत सारे दूसरे विडियो भी हैं।

सुषुप्ति अवस्था में प्रवेश

सुषुप्ति अवस्था को आप उपर ही समझ चुके होंगे। फिर भी उसे ताजा करने के लिए मैं पुनः यहां उसे थोड़ा सा फिर से दे रहा हूं।

यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्।

सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो हयानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ।। 5 ।।

इस स्थान में सोया हुआ किसी भोग की ईच्छा नहीं करता और ना ही कोई स्वप्न देखता है। उसे सुषुप्ति अवस्था कहते है। वह, सुषुप्ति जिसका स्थान है तथा जो एकीभूत(पंचभूत विलय होकर एक भूत हो जाता है), प्रज्ञानघन(जाग्रत और स्वप्न अवस्था का अज्ञान), आनंदमय(विश्राम की अवस्था, सुख दुख का अभाव), आनंद का भोक्ता और चेतनमुख(सीधे स्वयं ही ग्रहण करता है बिना किसी करण के) है। वहां ज्ञानी स्वयं ही ज्ञान का विषय होता है और कुछ नहीं। वह प्राज्ञ ही तीसरा पाद है।

और इसके समझने वाला मनुष्य या समाज किस परिणाम या फल या अभिव्यक्ति को प्राप्त करता है वो ये है।

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदं सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ।। 11 ।।

सुषुप्ति जिसका स्थान है, वह प्राज्ञ मान और लय के कारण तीसरी मात्रा मकार है। जो उपासक ऐसा जानता है, वह इस सम्पूर्ण जगत का मान प्रमाण(ज्ञात कर लेना) कर लेता है। और उसका लय स्थान हो जाता है।

इस सुषुप्ति अवस्था में हमारी याददाश्त या स्मृति अपने आप से काम नहीं करती, जैसे जाग्रत अवस्था में लगातार काम करती रहती है या स्वप्नावस्था में आटोमैटिक काम करती रहती है। और चूंकि याददाश्त ही काम नहीं करती तो इस कारण से हम वहां पूर्ण विश्राम कर पाते हैं। चूंकि बिना याददाश्त के कुछ भी प्रारम्भ नहीं हो सकता तो इसी कारण वहां विश्राम हो पाता है अर्थात् आराम हो पाता है। और याददाश्त इसलिए काम नहीं करती क्योंकि याददाश्त को काम करने के लिए हमारा पर्याप्त मात्रा में चेतन होना आवश्यक है। और सुषुप्ति अवस्था में हम चेतन नहीं रहते, बल्कि सो जाते हैं इसलिए ही वहां याददाश्त या स्मृति काम नहीं करती। क्योंकि हमारे बिना कैसे काम करेगी? हम सुषुप्ति अवस्था में बहुत ही अल्प मात्रा में चेतन रहते हैं। इसे

उदाहरण के लिए ऐसे समझ सकते हैं कि यदि जाग्रतावस्था में हमको 100 प्रतिशत चेतन माना जाये तो स्वप्नावस्था में हम 30 प्रतिशत चेतन होते हैं और सुषुप्ति अवस्था में केवल 5 प्रतिशत चेतन होते हैं। अब ये 5 प्रतिशत चेतनता पर्याप्त नहीं होती याददाश्त को काम करने के लिए। और इसी कारण इस अवस्था में रहने वाली चीजें अधिक स्थाई रह पाती हैं। उनमें जल्दी से परिवर्तन नहीं होता। इसी कारण से हमारा कोई अभ्यास लम्बे समय तक स्थिर रह पाता है। इसी कारण से कोई भी याद आवश्यकतानुसार लम्बे समय तक रह पाती है। वहां कुछ भी बहुत जल्दी से नहीं बदलता। इसी लिए संबंधों के मामले में भी कोई भाव किसी दूसरे के लिए ना तो आसानी से बनता है और ना ही आसानी से बिगड़ता है। लगातार कई बार के अनुभवों से ही किसी के बारे में कोई भाव हमारे अंदर उपजता है और उपजने के बाद बदलने में भी समय लगता है।

आईये इस अवस्था में प्रवेश करने से पहले कुछ बातों को समझ लेते है जोकि आपको इस अवस्था में प्रवेश करने में सहायक होंगी। और वैसे भी इन महत्वपूर्ण बातों को जान लेना चाहिए। जैसेकि अहम्, अहम्कार, व्यक्तित्व, ईच्छा या कामना या वासना, सुख दुख, स्मृति यानि याददाश्त, बुद्धि, संस्कार, भावनाएं, स्वतंत्रता, आत्मा आदि।

अहम्

अहम् संस्कृत भाषा का शब्द है जिसको हिंदी में **मैं** कहते हैं। और जब हम अपने आपको **मैं** कहते हैं और यदि आपको ये प्रश्न खड़ा हो जाये कि **मैं** कौन हूं, **मैं** मतलब क्या? तो उस समय सामान्यतः हमें केवल ये ही सूझता है कि **मैं** पुरूष हूं कि स्त्री हूं, **मैं** मां हूं कि बाप हूं, इतने साल की आयु वाला हूं आदि आदि। लेकिन ये तो हम केवल अपने अहम्कार के बारे में बता रहे होते हैं। वो जो हम समय समय पर इस जीवन में प्राप्त करते जाते हैं। इस अहम्कार के बारे में आगे हम विस्तार से समझेंगे। तो यहां अहम् के बारे में समझने का प्रयास करते हैं। ये वो **मैं** है जिसका कि बाहय आकारों से कोई लेना देना नहीं है। ये सारे नामरूप और उपाधियां आदि तो हमें जन्म के बाद मिलने या अनुभव होने प्रारम्भ होते हैं। तो बिना किसी नामरूप या उपाधियों के बिना **मैं** क्या हूं? तो हमें समझ आयेगा कि **मैं** अपने आप में एक अनुभव जैसा लगता है। बस **मैं** हूं, इससे ज्यादा कुछ नहीं। लगता है कि ये सब नामरूप उपाधियों को यदि मैं हटा भी दूं तो भी क्या मेरा कोई अस्तित्व बचेगा? ऐसा प्रश्न उठ खड़ा होता है। और इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए ही कितने सारे

लोग विभिन्न प्रकार से प्रयास करने में लगे रहते हैं और अभी तक ठीक से स्पष्ट नहीं हो पाया कि कौन सफल हुआ और कौन नहीं। लेकिन कुछ लोग कहते हैं कि खुद को जानना बहुत ही कठिन है लेकिन वो जान चुके इस **मैं** को यानिकि खुद को। और उसके बाद उनसे बहुत सारे लोग बहुत सारे प्रश्न करने लग जाते हैं इस **मैं** के बारे में। क्योंकि बहुत लोग जानना चाहते हैं इस **मैं** को। और हमारे पास कोई तरीका नहीं होता ये जांचने का कि ये सत्य कह रहे हैं या असत्य। और ये **मैं** को जानने वाले लोगों के उत्तर एक जैसे नहीं होते। बल्कि कई बार तो ऐसा लगता है कि जैसे बिल्कुल विपरीत बता रहे हों। जैसे कई लोग कहते हैं कि ये आत्मा है लेकिन जब उनसे इस आत्मा के बारे में पूछा जाता है तो लगभग सभी अलग अलग प्रकार की बाते उस आत्मा यानिकि **मैं** के बारे में बताने लगते हैं। और कई लोग कहते हैं कि ये **मैं** तो केवल भ्रम है और कुछ नहीं, कोई बोलते हैं कि यह अजन्मा है, कोई कहते हैं कि ये जन्मता और मरता है, कोई कहते हैं कि इसका पुनर्जन्म होता है, और कोई कहता है कि पुनर्जन्म नहीं होता है, कोई कहता है कि इसे शब्दों में नहीं बताया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है, कोई कहता है कि इसे जाना ही नहीं जा सकता आदि आदि। कुल मिलाकर इस आधार पर बहुत सारे धर्म संप्रदाय बने हुए हैं उनकी पुस्तकें बनी हुई हैं। और ये भ्रम लगातार समाज में बना हुआ है कि वास्तव में इस **मैं** का सत्य क्या है। क्योंकि अभी तक इस प्रकार से कोई नहीं बता पाया कि जिससे स्पष्टता हो और कोई भ्रम ना रहे।

अब मैं यहां इसको स्पष्ट करने का प्रयास करता हूं। और मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अब इस **मैं** के बारे में ऐसी स्पष्टता हो सकेगी कि अब भ्रम की स्थिति ना रहे। और इसकी जांच करने का तरीका भी बता रहा हूं जिससे इसे जांचा भी जा सके कि मैं जो कह रहा हूं वो सही है कि नहीं।

देखिये अभी समान्यतः हम जो **मैं** के रूप में अनुभव करते हैं वो विभिन्न प्रकार के नामरूप उपाधियों के साथ करते हैं। अब यदि एक एक करके इन नामरूप उपाधियों को अलग करते जायें तो अंत में केवल शुद्ध **मैं** ही बचेगा। और ये सब हम अभी कल्पना में ही करेंगे। और यदि ये सब आप ठीक से कर पाते हैं तो आपको इस शुद्ध **मैं** का हल्का सा अनुभव हो जायेगा और समझ में भी आ जायेगा कि यही होगा। और बाद में साधना के द्वारा आप इसे प्रगाढ़ता से अनुभव भी कर पायेंगे कि जो आपने हल्का सा अनुभव किया इस **मैं** का वो सही था। इस **मैं** के बारे में यदि और जानने का प्रयास करेंगे तो और कई तथ्यों को इसके बारे में पायेंगे कि ये कुछ क्षमताओं को भी लिए हुए है। एक तो ये कि जब आप इसको अनुभव करने जायेंगे तो पायेंगे कि ये आकाश की भांति है। मतलब जब आप साधना के द्वारा जागे हुए इस सुषुप्ति

अवस्था में जायेंगे तो वहां अपने आपको अर्थात् इस **मैं** को आकाशरूप ही अनुभव करोगे। दूसरा इसमें ईच्छा करने की सामर्थ्य है। ये कोई भी प्रकार की ईच्छा कर सकता है। जैसे ये कुछ जानने की ईच्छा कर सकता है, ये कुछ करने की ईच्छा कर सकता है, ये कुछ भोगने की ईच्छा कर सकता है, ये विश्राम की ईच्छा कर सकता है आदि। और ईच्छा करने के बाद ये उनको प्राप्त करने का प्रयास भी कर सकता है। ये कल्पना भी कर सकता है। ये कोई गणना भी कर सकता है। ये कोई निर्णय भी कर सकता है। ये याद भी रख सकता है। ये चर्चा भी कर सकता है किसी विषय में।

तो समझ के आधार से भी और बाद में साधना के द्वारा भी इस शुद्ध **मैं** का अनुभव कर सकते हो। और इस शुद्ध **मैं** की क्षमताओं का भी अनुभव या ज्ञान पा सकते हो। तो इसी शुद्ध **मैं** को ही संस्कृत में अहम् शब्द से कहा जाता है। ये **मैं** ही अहम् है संस्कृत में।

अहम्कार

उपर आप शुद्ध **मैं** या अहम् के बारे में समझ ही चुके हैं। जब इस जाग्रतावस्था में शुद्ध **मैं** या अहम् पर विभिन्न प्रकार के नामरूप उपाधियां आदि जुड़ने लगते हैं तो इसे संस्कृत में अहम्कार शब्द से जाना जाता है। अर्थात् इस **मैं** या शुद्ध अहम् का दायरा या फ्रेम कैसा है या इस **मैं** के कार्य या अभिव्यक्ति कैसी है, यही इस अहम् का कार या कार्य या आकार है। इसे ही अहम्कार कहते हैं संस्कृत में। ये नामरूप उपाधियों से यहां अर्थ है कि शरीर, उसके विभिन्न रूप, विभिन्न प्रकार की सुंदरता अथवा कुरूपता, विभिन्न प्रकार के नाम, फिर सबकी अलग अलग पसंद नापसंद, सबके विभिन्न प्रकार के समझ के स्तर, सबके अपने अपने अलग अलग प्रकार के दायरे, कोई किसान, कोई अध्यापक, कोई वैज्ञानिक, कोई ऐसा कोई वैसा अर्थात् सबके अलग अलग प्रकार के कर्म, विभिन्न वेष भूषा आदि आदि।

ईच्छा या कामना या वासना या चाहत

जैसा कि उपर अहम् या शुद्ध **मैं** या मूल अस्तित्व को हम समझ ही चुके हैं तो इस मूल **मैं** तत्व का एक गुण ईच्छा करना है। ईच्छा कहो या कामना कहो या वासना कहो या मनोकामना कहो या चाहना कहो, इस संदर्भ में एक ही बात है। और ईच्छा होती है सुखी होने की। यही इस **मैं** की मूल ईच्छा होती है। इसी मूल ईच्छा के कारण ही ये **मैं** किसी भी प्रकार के प्रयास में या क्रिया में जाता है। इसी मूल ईच्छा के कारण ही हमें हमारे जीवन में विभिन्न प्रकार की दूसरी ईच्छाएं पैदा होती रहती

हैं। और हम सभी में मूल ईच्छा एक ही जैसी है, और वो है केवल और केवल सुखी होने की। इसी लिए हमारी सारी दूसरी ईच्छाएं इसी मूल ईच्छा के अनुरूप ही रहती है। अर्थात् चाहे कोई यहां अच्छी प्रकार की ईच्छाएं करे या बुरी प्रकार की ईच्छाएं करे, वो करता है अपने आपको सुखी करने के लिए ही। चाहे कोई ज्ञानपूर्वक ईच्छा करे या अज्ञानपूर्वक ईच्छा करे लेकिन वो करता केवल और केवल सुखी होने के लिए ही है। मूल में सुखी होने की ईच्छा को कोई भी दरकिनार नहीं कर सकता अर्थात् इस मूल ईच्छा के परे नहीं जाया जा सकता। या इस **मैं** का ईच्छा के बिना कोई अर्थ नहीं है। यदि ईच्छा नहीं तो इस **मैं** का भी कोई मतलब नहीं। मूल में सबके सुखी होने की ईच्छा होती है और दूसरी ईच्छाएं निर्भर करती है इस अहम्कार के आधार पर और साथ ही परस्तिथियों पर। अर्थात् हमारे व्यक्तित्व पर और बाहर की स्तिथियों पर। हमारी दूसरी ईच्छाओं में वस्तुतः अंतर होता है। उदाहरण के लिए हो सकता है कि एक आदमी को आलू बैंगन की सब्जी खाने में सुख मिलता हो लेकिन किसी दूसरे को आलू गोभी की सब्जी में सुख मिलता हो। तो जैसा जिसका व्यक्तित्व वैसी उसकी ईच्छाएं। अब हमारे सामने परस्तिथियां भी दो प्रकार की हो सकती हैं। एक वो जोकि हमारे लिए पूर्णतया सुखदायी हैं और दूसरी वो जोकि हमारे लिए या तो पूर्णतया दुखदायी हैं या उनमें सुख और दुख मिश्रित हैं। उदाहरण के लिए भोजन खाने की ईच्छा हुई और वैसा ही भोजन हमें मिल भी रहा हो बिना किसी को दुखी किये। तो ये सुखदायी वाली परस्तिथियों में की गई ईच्छा होगी। इसमें पूर्णतया सुख ही मिलेगा। दूसरी भोजन की ईच्छा है लेकिन वो हमें उपलब्ध नहीं है। तो अब ये दुखदायी वाली परस्तिथि होगी। इसमें यदि हम भोजन की ईच्छा को छोड़ देते हैं तो भी दुख, या उसके स्थान पर कोई दूसरे प्रकार का बिना स्वाद वाला भोजन करते हैं, तो इसमें कुछ सुख मिल जायेगा और कुछ दुख मिलेगा। अर्थात् भूख मिट गई ये सुख होगा लेकिन स्वादिष्ट नहीं था ये दुख रहा। स्वादिष्ट भोजन मिल सकता है लेकिन उसके लिए आपको कुछ ऐसा करना होगा जिसमें दूसरे को दुख देना पड़ेगा, जैसेकि हम किसी से छीनकर या चोरी करके या कोई भी ऐसा तरीका जिसमें कि दूसरे को दुख पैदा होगा, तो इसमें हमें सुख के साथ साथ दुख भी मिलने का भय रहेगा। और तीसरी संभावना जिसमें कि केवल केवल दुख ही मिलेगा हमको। तो तीसरी वाली संभावना के लिए तो कोई प्रयास नहीं करता क्योंकि पूर्णतया दुखी होना तो कोई भी नहीं चाहता। पहले वाले दो तरीके में ही आदमी जाता है। और दूसरे तरीके में भी केवल तभी जाना चाहता है जब उसे पहले वाला तरीका उपलब्ध नहीं होता। और मूल में तो सभी सुखी होने के लिए ही सारी ईच्छाएं करते हैं। मूल में सुखी होने की ईच्छा ही होती है। बाकी सारी ईच्छाएं परस्थितिजन्य होती हैं। अर्थात् यदि खराब वाली स्थिति सामने आयेगी तो ही उस प्रकार की ईच्छा हमारे अंदर पैदा

होगी। नहीं तो नहीं होगी। तो ये जो लोग बोलते हैं कि क्रोध, भय, लोभ, प्रतिस्पर्धा, प्रेम, घृणा, हिंसा, लगाव आदि जितनी भी बातें हैं ये सब हमारे मूल स्वभाव में होती हैं, ये बात सही नहीं है। बल्कि इस प्रकार की ईच्छाएं परिस्थितिजन्य होती हैं। इससे ये मूल ईच्छा और व्यक्तित्व आधारित तथा परस्थितिजन्य ईच्छाओं को हम समझ गये होंगे। और जब ईच्छा शब्द का प्रयोग हो रहा है तो समझना चाहिए कि ईच्छा का संबंध चेतन से है नाकि जड़ से। केवल चेतन ही ईच्छा कर सकता है। जड़ पदार्थों में जो भी आप क्रिया कलाप देखते हैं वो सब उसमें निश्चित नियमों के आधार से होते रहते हैं। जड़ पदार्थों में ईच्छा का अभाव रहता है। ईच्छा करने के लिए वस्तु में एक निश्चित चेतनता की मात्रा चाहिए होती है। इसको आप ऐसे समझ सकते हैं कि जब आदमी जागा हुआ होता है तो ईच्छाएं करता है। और जब वही आदमी स्वप्न में होता है तो वहां ईच्छाएं नहीं होती बल्कि एक बहाव जैसा रहता है। अर्थात् स्वप्न में ईच्छा ना होकर केवल घटनाएं जैसी होती रहती हैं। क्योंकि स्वप्नावस्था में हमारी चेतनता की मात्रा काफी कम हो जाती है। तात्कालिकरूप से सब होता रहता है। आशा है कि आप ईच्छा और अपने आप घटने वाली घटनाओं में अंतर समझ पा रहे होंगे। और जब आदमी गहरी नींद में होता है या बेहोशी की अवस्था में होता है तो वहां वो कोई भी ईच्छा नहीं कर रहा होता जबकि वो जीवित होता है। तो केवल जीवित होने से ईच्छा करना नहीं होता बल्कि इसके लिए जीव का पर्याप्त मात्रा में चेतन होना भी आवश्यक है।

सुख, दुख क्या हैं?

सुख और दुख को भी समझते हैं। जब हमारी ईच्छाएं पूरी होती रहती हैं तो इससे हमें अच्छा लगता है और यही अच्छा लगना ही सुख कहलाता है। हमें अच्छा लगना या सुखी होना एक ही बात है। या जब भी कोई वस्तु आदि के हम संपर्क में आते हैं और यदि वो हमें अच्छी लगती है तो उससे हम सुखी होते हैं और उसे अपनी पसंद में शामिल कर लेते हैं। और इसके उल्टे दुख वो है जब हमारी ईच्छाएं पूरी नहीं होती या हमारे संपर्क में कुछ ऐसा आता है जोकि हमें बुरा लगता है। और उसे हम अपनी नापसंद में शामिल कर लेते हैं। पसंद वाली वस्तुओं आदि से हमें राग या लगाव हो जाता है और नापसंद वाली वस्तुओं आदि से हमें द्वेष या दुराव हो जाता है। सुख देने वाली वस्तुओं आदि को हम अपने पास रखना चाहते हैं और उनका संग्रह करने लगते हैं। सुखद वस्तुओं के ना मिलने की कल्पना से भय होने लगता है। इसलिए सतत उनको पास बनाये रखने का प्रयास करते रहते हैं। दुख देने वाली वस्तुओं आदि को हम अपने से दूर रखना चाहते हैं इसलिए उनको हम संग्रह नहीं करते।

और उनके पास आने के भय भयभीत रहने लगते हैं। तो ये सुख और दुख को हम समझ गये होंगे।

स्मृति या याददाश्त

जो भी हम अनुभव करते हैं, जो भी हम चिंतन मनन करते हैं, जो भी हम सुनते हैं, जो भी हम करते हैं, हमारी पसंद या नापसंद आदि वो सब हमारी रूचि के आधार से हमारे अंदर संग्रहीत होते जाते हैं। इसी को स्मृति या याददाश्त कहते हैं। हर स्मृति की आयु हमारी रूचि या वो हमारे लिए कितनी महत्वपूर्ण है, इस तथ्य से निश्चित होती है। यही स्मृति ही हमारे सारे व्यक्तित्व का एक कारक बनती है। हमारी दूसरी प्रकार की ईच्छाओं का आधार ये स्मृति ही बनती है। ये स्मृति के कारण ही हमारे अहम्कार का निर्धारण होता है।

संस्कार या आदतें या अभ्यास

संस्कार का अर्थ होता है कि किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए अच्छे से चिंतन मनन करके जब हम खुद को या किसी को कोई आदत या अभ्यास कराते हैं तो बार बार अभ्यास के कारण हमारे चित्त पर या स्मृति में उसकी छाप पड़ती जाती है और उसमें हम कुशल होते जाते हैं। बार बार अभ्यास करने से जो छाप हमारे अंदर पड़ती जाती हैं और यदि उस छाप के आधार से हमें ईच्छाएं भी उठने लगें तो इस छाप को ही आदत कहा जाता है। और अभ्यास तो आप समझते ही होंगे कि यदि बार बार किसी कार्य को किया जाये तो इसी बार बार करने को ही अभ्यास कहते हैं।

बुद्धिमानी, ज्ञान या समझ क्या है?

आईये अब इस समझ को समझते हैं या जिसे बुद्धिमान होना कहा जाता है उसे समझने का प्रयास करते हैं। आशा है कि आप आज से पहले शायद ही इस समझ को इस प्रकार से समझ पायें होंगे। और इसे जानने के बाद निश्चित ही आपके जीवन में कई प्रकार के अच्छे परिवर्तन आयेंगे। जिसे हम लोग समझ कहते हैं या ज्ञान कहते हैं वो इसी सुषुप्ति अवस्था के कारण ही सम्भव हो पाता है। अर्थात् इसी

याददाश्त के कारण ही हम ये जान पाते हैं कि भविष्य में किस विषय के सम्पर्क में आने से हमें सुख अथवा दुख होगा। विषयों के सम्पर्क और उनसे होने वाले सुख अथवा दुख में संबंध याद कर पाते हैं। ये संबंध याद रख पाने ही को समझ या ज्ञान कहते हैं। सारी समझ या सारा ज्ञान इसी बात के लिए होता है कि किससे हम सुखी अथवा दुखी होते हैं। हमारे सारे ज्ञान का तीर इसी सुख अथवा दुख की ओर ही होता है। इस बात को अपने अंदर जब आप समझने का प्रयास करेंगे तो वास्तव में आप क्या करेंगे? आईये इस समझ को ही समझने का प्रयास करते हैं। समझ की इस प्रक्रिया को समझने का प्रयास करते हैं। यदि हम अपनी सारी याददाश्त या स्मृति को जांचे और याद करने का प्रयास करें तो हम पायेंगे कि जिस बात से हम बहुत ज्यादा सुखी अथवा दुखी हुए हैं वो ही हमें अधिक ज़ोर से और अधिक स्पष्टता से याद रहती है और बहुत अधिक लम्बे समय तक याद रहती है। और हमारे सभी संबंधों का आधार भी यही रहता है कि कौनसा संबंध हमारे लिए सुखदायक अथवा दुखदायक रहा। ये संबंध किसी जीव के साथ हो सकता है या किसी वस्तु के साथ हो सकता है। जब भी हम सबको सही और गलत का निर्णय करना होता है तो उसके आधार में यही रहता है कि उससे हम सुखी होंगे या दुखी होंगे। अब यदि उससे हम दुखी होते हैं तो हम कहते हैं कि ये बात गलत है। और यदि हम सुखी होते हैं तो उस बात को हम सही है, ऐसा कहते हैं। और किसी बात में सही और गलत का निर्णय लेना ही तो समझ कहलाता है। हमारा व्यक्तित्व भी तो पसंद और नापसंद के अलावा कुछ और नहीं होता। और पसंद और नापसंद के मूल में हैं हमारी इच्छाएं। तो कुल मिलाकर हमारी समझ का आधार हुआ हमारी ईच्छा। और ईच्छा भी जोकि निसंदेह सुखी होना ही है। और आप इस बात पर गौर कीजिए कि क्या समझ इससे अलग और कुछ होती है? मूल में हमें किससे सुख होगा इसी प्रकार के निर्णय करने को ही समझ कहते हैं। बाद में जब हमारे जीवन में इन यादों के बहुत सारे स्तर या लेअर्स चढ़ जाती हैं तो समझ भी अपने आपमें बहुत जटिल प्रक्रिया जैसी लगने लगती है। और ऐसा लगने लगता है कि जैसे इस समझ के बारे में हमारे पास कोई समझ नहीं है। और यदि कोई हमसे पूछे कि ये समझ क्या होती है तो हम लोग कोई संतुष्टिकारक उत्तर नहीं दे पाते। मतलब समझ के बारे में हम कितने नासमझ हैं हमें ऐसा लगने लगता है। वैज्ञानिको को भी बहुत कोतुहल रहता है कि ये समझ क्या है। वे इसे कोई बहुत जटिल प्रक्रिया जैसा कुछ बताते रहते हैं। लेकिन अब तो आप समझ चुके होंगे, और केवल समझ ही नहीं चुके होंगे बल्कि अपने अंदर निश्चित भी कर चुके होंगे कि ऐसा ही है। किसी बारे में सत्य जानने को या सही और गलत का निर्णय करने को ही समझ कहा जाता है। जोकि दोनों ही हमारी ईच्छा और याददाश्त या स्मृति पर आधारित होते हैं। और हम पहले ही ये बात ज्ञात

कर चुके हैं कि हमारी ईच्छा है सुखी होने की। इसीलिए मैं बार बार कहता हूं कि सबकुछ निर्णय करने के लिए एक कसौटी चाहिए होती है। और वो है जीवन का उद्देश्य यानिकि सुख यानिकि हमारी मूल ईच्छा। तो समझ के मूल में हमारी ईच्छा ही है। हममें और कंप्यूटर में बस यहीं एक अंतर है कि हम सुखी होने की ईच्छा करते हैं और कंप्यूटर नहीं करते जबकि याद को रखने का गुण दोनों में होता है। कंप्यूटर में याद रखने की क्षमता के कारण ही हम कंप्यूटर से बहुत सारे निर्णय करा पाते हैं, बहुत सारी गणनाएं करा पाते हैं। मतलब ऐसा लगता है जैसे कि कंप्यूटर कोई बहुत समझदार यंत्र है। इसके इस समझदार जैसा लगने में इसी याददाश्त वाले गुण का हाथ है। तो आशा है कि अब तक हम अपने अंदर इस समझ नाम की चीज को समझ चुके होंगे अर्थात् अब समझ हमारे लिए नासमझ नहीं है बल्कि अब हम समझ को भी समझते हैं।

भावनाएं क्या होती हैं?

प्रेम, स्नेह, क्रोध, द्वेष, घृणा, आदर आदि भावनाएं हैं। अब इन्हें समझने के लिए इनमें से एक को उदाहरण के रूप में ले लेते हैं। जैसे प्रेम भावना को लेते हैं। किसी को ये प्रेम अपने अंदर कब अनुभव होता है? और हां ये प्रेम दो रूपों में हम अपने अंदर अनुभव करते हैं। पहला ये कि कोई हमें प्रेम कर रहा है। दूसरा कि हम किसी को प्रेम कर रहे हैं। अर्थात् जब जब कोई हमारे सुख का साधन बन रहा होता है तो हमें ये अनुभव होता है कि वो हमें प्रेम करता है। और जब जब हम किसी को प्रेम करते हैं तो हम उसके सुख का साधन बनते हैं। जैसे माता पिता अपने बच्चे के सुख का साधन बनते हैं तो बच्चा अनुभव करता है कि उसके माता पिता उसे प्रेम करते हैं। और यदि बच्चा बड़ा होकर माता पिता का आदर करता है और उनकी देख रेख करता है तो माता पिता को अपने अंदर ये अनुभव होता है कि वो उन्हें प्रेम करता है। अर्थात् जब जब हम एक दूसरे के सुखों का कारण बनते हैं तब तब हम उसके प्रति अपने अंदर आकर्षण अनुभव करते हैं और यदि ये कई बार हो जाये तो प्रेम को अनुभव करते हैं। कई बार पहली ही बार इतना अधिक आकर्षण अनुभव करते हैं कि वो प्रेम अनुभव होने लगता है। तो आकर्षण ही एक सीमा के बाद प्रेम हो जाता है। जैसे द्वेष ही एक सीमा के बाद घृणा हो जाता है। इसी प्रकार से हम समझ सकते हैं कि जब जब हम एक दूसरे के दुखों में कारण बनते हैं तो परस्पर द्वेष अनुभव करते हैं और यदि ये किसी संबंध में कई बार हो जाये तो घृणा अनुभव करते हैं, और फिर उसी अनुसार दूसरे के साथ व्यवहार करते हैं। तो इसका अर्थ ये हुआ कि बाहरी

परस्तिथयों के आधार पर ही हम एक दूसरे के लिए प्रेम या घृणा आदि भावनाएं अनुभव करते हैं या उनको प्रदर्शित करते हैं।

उपर की चर्चा से हम समझ चुके होंगे कि ये सारी भावनाएं हमारे अंदर परस्तिथयों के आधार से पैदा होती हैं नाकि कुछ पढ़ने लिखने से या सीखने से। ये भावनाएं सिखाने से पैदा नहीं होती हमारे अंदर। इनमें सीखने सिखाने जैसा कुछ नहीं होता। बल्कि ये हमारी मूल ईच्छा के आधार से उदय और अस्त होती हैं। और मूल ईच्छा तो आप जानते ही हैं कि वो है सुखी होना। अब जब भी किसी और के कारण आप सुखी होंगे तो आप आकर्षण या प्रेम अनुभव करेंगे और जब भी किसी और के कारण आप दुखी होंगे तो आप द्वेष या घृणा अनुभव करेंगे। चाहे आप कितने भी पढ़े लिखे हों या चाहे अनपढ़ हों। हां समझदार होने से या संस्कारित होने से केवल आपकी अभिव्यक्ति में अंतर आ सकता है। दुखी होने पर हो सकता है कि आप दूसरे के साथ कोई खराब व्यवहार ना करें किसी संस्कार आदि के कारण और हो सकता है कि आप अच्छा व्यवहार करें ये समझकर कि आपके अच्छे व्यवहार के कारण ये आदमी भी सुधरने का प्रयास करेगा, या भगवान तो देख ही रहा है आदि आदि मान्यताओं के आधार से।

इससे ये समझना बहुत ही आसान है कि ये सारी भावनाएं सीखने या सिखाने की या शिक्षित करने की बातें नहीं हैं बल्कि परस्थितियों के आधार से हमारे अंदर स्वभाविकरूप से होने वाले अनुभव हैं और स्वभाविक अभिव्यक्तियां हैं। यदि बाहर दुख वाली परस्थितियां पैदा होंगी तो द्वेष या घृणा हमारे अंदर पैदा होगा ही। या सुख वाली परस्थितियां पैदा होंगी तो आकर्षण या प्रेम पैदा होगा ही। इसी प्रकार सारी भावनाएं परस्थितियों के कारण ही पैदा होती हैं नाकि किसी और कारण से। इसलिए हमें बाहर व्यवस्था ही ऐसी बनानी होगी जिससे कि सभी के जीवन में केवल और केवल सुख वाली परस्थितियां ही पैदा हों। बस फिर ना दुख होगा जीवन में और ना हमारे जीवन में नकारात्मक भावनाएं होंगी। और सबके संबंध मधुर ही होंगे परस्पर, जोकि हम सब चाहते ही हैं।

स्वतंत्रता क्या है?

इस शब्द का प्रयोग भी हम सभी लोग बहुतायत में करते रहते हैं। तो आईये इसका सही और व्यावहारिक अर्थ क्या है इसे समझने का प्रयास करते हैं। ये शब्द दो शब्दों के मेल से बना है। स्व और तंत्र। स्व का अर्थ होता है हम स्वयं या खुद और तंत्र का अर्थ होता है एक ढांचा या सांचा। अर्थात् हमारा स्वयं का अस्तित्व। यनिकि यदि हमारे साथ सबकुछ हमारी ईच्छाओं के अनुसार होता रहता है तो हमें इस स्वतंत्रता का अनुभव होता है। या यूं कहें कि जब जब हम सुखी होते हैं तब तब हमें ये अनुभव होता है कि हम स्वतंत्र हैं। और जब जब हम दुखी होते हैं तो हमें परतंत्रता का अनुभव होता है। परतंत्रता माने जोकि हमारे अनुसार नहीं है। और स्वतंत्रता माने जोकि हमारे अनुसार है। तो एक तरह से हम कह सकते हैं कि सुख ही स्वतंत्रता को अनुभव कराता है। और दुख ही परतंत्रता को अनुभव कराता है।

अब हम इस स्वतंत्रता को परिभाषित कर सकते हैं। यदि हमारी ज्ञान, कर्म और भोग आदि की ईच्छाएं पूरी होती रहे सदां तो इसी को स्वतंत्रता कहते हैं। यही हमारी स्वतंत्रता का दायरा तय करता है। अर्थात् जिसकी जैसी और जितनी ईच्छाएं, वैसा और उतना ही उसकी स्वतंत्रता का दायरा। उतनी ही स्वतंत्रता कोई भी चाहता है। उससे कम कोई चाहता नहीं और उससे अधिक की जरूरत होती नहीं। और जबतक ऐसी व्यवस्था हम नहीं कर लेते जिसमें सभी की ईच्छाएं सदा ही पूर्ण होती रहें तबतक किसी भी मोजूदा व्यवस्था को पूर्ण स्वतंत्रता देने वाली नहीं कह सकते। और उसमें परिवर्तन करते रहना होगा। तो यदि हम अपना ईच्छित जीवन जीते रहते हैं तो हमें पूर्ण स्वतंत्रता की अनुभूति होती रहती है।

कर्म का सिद्धांत?

कर्म का यहां अर्थ है कार्यों से अर्थात् हम जो करते रहते हैं। विशेष तौर से भारत में ये मान्यता बहुत जोरों से है कि आप जैसे कर्म या कार्य करेंगे तो उसका फल अवश्य ही आपको मिलेगा। यदि इस जन्म में नहीं तो अगले जन्मों में कभी ना कभी आपके किये कर्मों का फल मिलेगा ही, इससे आप बच नहीं सकते। और कहते हैं कि आपके कर्म का फल केवल और केवल आपको ही मिलेगा किसी और को नहीं। कोई कहता है कि ये कर्मफल की व्यवस्था ईश्वर करता है और कोई कहता है कि प्रकृति में ये

प्रक्रिया निहित है। कहते हैं कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है लेकिन उसके फल के लिए परतंत्र है अर्थात् फल के लिए ईश्वर पर या प्रकृति पर निर्भर करते हैं। आओं इस पर चिंतन मनन करते हैं कि क्या कर्म का कोई इसप्रकार का सिद्धांत अस्तित्व में विद्यमान है?

मेरी खोज के अनुसार मैंने इस संसार में कोई इसप्रकार का कर्म का सिद्धांत नहीं पाया। हम सभी सुखी होने के लिए ही सारे कर्म या कार्य अपने जीवन में करते हैं। उदाहरण के लिए एक किसान खेत को तैयार करता है किसी फसल के लिए। उसके बाद उसमें बीज बिखेरता है। उनमें से वो बीज उगने लगते हैं जोकि उगने लायक होते हैं और कुछ बीज नहीं उगते। जबकि किसान तो दोनों प्रकार के बीजों के लिए बराबर ही मेहनत करता है। लेकिन बीज की स्थिति के कारण उसके फल में अंतर आ जा रहा है। कुछ बीज उगते हैं और कुछ बीज नहीं उगते। अब जो बीज उगते हैं उनको भी वो बराबर ही मेंहनत करके अपनी फसल को बड़ा करने में लग जाता है। लेकिन पूरे खेत में एक जैसी फसल तो होती नहीं कहीं अच्छी होती है और कहीं पर कमजोर होती है। जबकि पूरे खेत में वो सबकुछ बराबर ही करता है अपनी ओर से। अब ये अंतर आता है खेत की स्थिति के कारण। कई बार एक ही खेत में अलग अलग स्थान पर अलग अलग प्रकार की उर्वरा शक्ति होती है। और इसके अंतर के कारण अलग अलग स्थान पर पौघा अलग अलग क्वालिटि का हो जाता है। जबकि किसान तो अपनी ओर से एक ही जैसी मेहनत या कर्म कर रहा है पूरे खेत में। अब चलो फसल कुछ बड़ी हो गई तो एक दिन कोई जानवर खेत में घुस गया और कुछ फसल को खा गया। अब उतनी फसल किसान के लिए नष्ट हो गयी। और नष्ट हो गयी फसल का कोई फल अब उस किसान को आने वाला नहीं है। उसका फल उस जानवर को चला गया। अब यहां प्रत्यक्ष प्रमाण से पता चल रहा है कि किसान कर्म कर रहा है लेकिन उसका फल जानवर को भी जा रहा है, किसान को नहीं मिल रहा। कर्म का सिद्धांत यहां टूटता हुआ जानने में आ रहा है। अब और आगे चलते हैं कि यदि कोई सुखा या बाढ़ आ गई तो उसके कर्म का कोई फल किसी को नहीं मिलता। ना किसान को और ना किसी और मनुष्य या जीव को। वो पूरा का पूरा नष्ट हो जाता है। तो यहां ये कर्मफल का सिद्धांत बिल्कुल भी काम करता हुआ दिखाई नहीं दे रहा। सरकारी और प्राईवेट कर्म एक जैसे होने पर भी उसका फल सभी को अलग अलग मिल रहा है। जैसे कि विद्यालय में एक ही कक्षा में एक ही विषय को यदि ठेके पर कोई अध्यापक पढ़ा रहा है तो उसको बहुत ही कम वेतन मिलता है जबकि उसी पद पर सरकारी अध्यापक को बहुत अधिक वेतन मिलता है। उसके अलावा दूसरी सुविधाएं भी इस सरकारी अध्यापक को मिलती है जबकि ठेके

पर काम कर रहे अध्यापक को नहीं। अब बताईये ये कर्मफल का सिद्धांत कहां काम कर रहा है? और कितने ही लोग बिना वेतन के भी पढ़ाते हैं उनको तो कोई भी वेतन नहीं मिलता। यहां भी ये सिद्धांत काम नहीं कर रहा है। और ये कर्मफल सिद्धांत के पक्षकार ये भी नहीं बताते कि किस कर्म का क्या फल आयेगा। इससे भी यही सिद्ध होता है कि कर्मफल का सिद्धांत केवल और केवल मनुष्य की ऐसी कल्पना है जोकि कभी भी किसी के द्वारा सिद्ध नहीं की गई।

पहले कर्म होता है या जन्म?

अब ये तथाकथित आध्यात्मिक लोग अपने चर्चाओं में या अपनी पुस्तकों में कहते हैं कि जीव का जन्म, पिछले जन्मों में उसके द्वारा किये गये कर्मों के आधार पर होता है। जब मैंने उनसे पूछा कि क्या बिना जन्म लिये कोई कर्म संभव है? तो वे कहने लगे कि जन्म के बिना तो कोई कर्म संभव नहीं है। तो फिर मैंने पूछा कि फिर ये पहला जन्म किस कारण से हुआ? तो वे निरूत्तर हो गये। कहने लगे कि इसके बारे में तो उनके ग्रंथों में कुछ स्पष्टरूप से लिखा हुआ नहीं है। तो मैंने कहा जिस भी कारण से पहला जन्म हुआ होगा तो उसी कारण से दूसरे जन्म होने चाहिए। और ये तो स्पष्ट हो ही गया कि कोई भी जन्म किसी के पिछले जन्मों में किये गये कर्मों के कारण तो नहीं हो सकता।

उपर आपने पुस्तक का अध्ययन किया ही है और आप जान ही गये होंगे जन्म का कारण केवल और केवल सुखी होने की ईच्छा है और कुछ नहीं।

क्या पुनर्जन्म होता है?

ये तथाकथित अध्यात्मिक लोग ये भी कहते हैं कि जीवों का पुनर्जन्म होता है। जब मैंने उनसे पूछा कि आपको कैसे ज्ञात है कि जीवों का पुनर्जन्म होता है? क्या आपको अपने पिछले जन्म के बारे में कुछ भी याद है? तो वे कहते हैं कि उन्हें पिछले जन्म का कुछ भी याद तो नहीं है। लेकिन जीव को अपने किये हुए कर्मों का फल भोगने के लिए बार बार जन्म लेना पड़ता है। तो मैंने पूछा कि जब कुछ भी याद नहीं है तो किस आधार पर आप कह रहे हो कि पिछला कोई जन्म था आपका? तो वे बस ये ही कहते हैं कि उनके ग्रंथों में लिखा हुआ है। तो मैंने उनसे पूछा कि क्या ग्रंथों में पुनर्जन्म को सिद्ध किया है किसी भी तरह? तो वे कहते हैं कि सिद्ध जैसा तो कुछ नहीं है ग्रंथों में। ये तो श्रद्धा की बात है। आप मानते हो तो मानते हो, और यदि श्रद्धा नहीं है तो नहीं मानोगे। तो ये बात है। अभी केवल ये अंधश्रद्धा के कारण ही इन कर्मफल और पुनर्जन्म आदि जैसी बातों को मानते हैं। इनके पास किसी भी बात

को सिद्ध करने जैसा कुछ भी नहीं है। बस कहते हैं कि श्रृषि लोग असत्य थोड़े ना लिखेंगे। मैंने पूछा कि आपको कैसे पता कि ये सब श्रृषियों ने ही लिखा है? तो वे फिर से बोले कि ये भी श्रद्धा की ही बात है। तो इसप्रकार की बहुत सी बाते समाज में बहुत पहले से चलती आ रही हैं। जिनका कोई सटीक आधार नहीं है। बस किसी ने किसी के प्रश्न को जैसे तैसे उत्तर करने की कोशिश की होगी और वो फिर लोग उसी उत्तर को दोहराते चले आ रहे हैं। आओं अब इस सिद्धांत को तात्विकरूप से समझने का प्रयास करते हैं।

यदि हम इस प्रकृति का अध्ययन करें तो पायेंगे कि ये बात सही है कि तत्वों का एक रूप से दूसरे रूप में निरंतर परिवर्तन हो रहा है। ये बात विज्ञान के द्वारा भी और सामान्य ज्ञान के द्वारा भी सिद्ध है ही। और हर रूप कुछ समय तक लगातार बना जैसा दिखता रहता है जबकि उसमें सभी समय लगातार परिवर्तन हो रहा है। उदाहरण के लिए समुद्र को देंखे कि उसमें लगातार पानी चारों ओर से आकर मिल रहा है और लगातार उसका पानी वाष्प में भी परिवर्तित होकर वायुमंडल में जाकर मिल रहा है। इस लगातार परिवर्तन के बावजूद भी ऐसा लगता है कि समुद्र तो लगातार बना हुआ है। इसी प्रकार वृक्ष और दूसरे जीव आदि में भी लगातार परिवर्तन हो रहे हैं। अब क्या इसे समुद्र का पुनर्जन्म कहोगे? अब यदि एक स्थान पर समुद्र सूख जाये और किसी दूसरे स्थान पर समुद्र बन जाये तो क्या ये समुद्र का पुनर्जन्म होगा? याकि जल एक स्थान से हटकर दूसरे स्थान पर इकट्ठा हो गया और वहां एक दूसरा ही समुद्र पैदा हो गया? निष्चितरूप से ये दूसरा ही समुद्र होगा। हां जल अवश्य पहले वाला ही होगा। यदि हम यहां जल को मुख्य तत्व के रूप में लें तो।

ये लगातार इस प्रकृति में से दूसरे तत्वों को धारण करते जाते हैं और कुछ तत्वों को लगातार त्यागते रहते हैं फिर भी वे लम्बे समय तक बने रहते हैं। कुछ समय बाद ये धारण करना धीमे हो जाता है और त्यागना बढ़ जाता है। एक समय आता है कि धारण करना बहुत मंद हो जाता है कि फिर वो रूप बना नहीं रह सकता। और इसको हम लोग उस वृक्ष या जीव की मृत्यु कहते हैं। तो इसप्रकार से हम देख सकते हैं कि तत्वों का तो पुनर्जन्म लगातार हो ही रहा है। प्रकृति में बहुत सारे छोटे बड़े चक्र चल रहे हैं। लेकिन व्यक्तित्व का पुर्नजन्म नहीं होता है। अब ये व्यक्तित्व क्या है इसे समझने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य की कुछ पसंद नापसंद होती हैं। जो भी विषय उसके संपर्क में आते हैं, उनमें से जो भी उसे सुख देते हैं वो उसकी पसंद में आ जाते हैं और जो भी उसको दुख देते हैं वो उसकी नापसंद में आ जाते हैं। अब इन पसंद और नापसंद के आधार से ही कोई भी मनुष्य या जीव अपनी अभिव्यक्ति देता है या अभिव्यक्त होता है। ये जो उसकी पसंद और

नापसंद का फ्रेम है उसका, इस फ्रेम को ही व्यक्तित्व कहते हैं। जैसे ये मेरा नाम है, ये मेरा काम है, कुछ मेरा रूप रंग है, ये मेरे माता पिता या संबंधि हैं, कुछ विषय मैं पसंद करता हूं और कुछ विषय मैं नापसंद करता हूं, आदि आदि। इन्ही से संबंधित मेरी याददाश्त होती है। इसी सब को व्यक्तित्व कहते हैं। तो इसका तो पुनर्जन्म नहीं होता है। और ना ही कोई अर्थ है इसके पुनर्जन्म होने का। एक बच्चा जन्म लेता है और जिस समाज में वो जन्मा है, वहां के अनुसार शिक्षा संस्कार आदि से संस्कारित होता हुआ किसी एक राम या श्याम या राजू आदि के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार किसी व्यक्तित्व को वो धारण करता एवं उसके अनुसार व्यवहार करता रहता है सारे जीवन। यही व्यक्तित्व है। और जब ये सारे तत्व बिखर जाते हैं किसी भी कारण से तो ये जो व्यक्तित्व था वो भी बिखर जाता है, विलीन हो जाता है। अव वहां राम और श्याम और राजू जैसा कोई व्यक्तित्व नहीं रहता। एक कहानी प्रारम्भ हुई थी उसके जन्म के साथ जोकि उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गई। बात खत्म हुई। जैसे हमने कुछ तत्वों के कुछ परमाणुओं को जोड़कर हमने एक चीज बनाई जिसका नाम कार रखा। कुछ समय बाद उस कार के सारे परमाणु बिखर गये और अब वहां कार जैसा कुछ नहीं है। केवल और केवल वो परमाणु किसी और तत्व में या रूप में परिवर्तित हो गये और कोई दुसरा व्यक्तित्व अभिव्यक्त करने लगे। और एक उदाहरण से बात को स्पष्ट करना चाहूंगा। एक ही प्रकार के स्वर्ण धातु से विभिन्न प्रकार के नामरूप वाले आभूषण सुनार तैयार करता है। और हम सब जानते हैं कि वो सब स्वर्ण धातु ही है आभूषण बनने के बाद भी लेकिन फिर भी हम उनको विभिन्न नामों से जानते हैं। माला, पाजेब, अंगूठी आदि। बाद में जब हम अंगूठी को ले जाकर सुनार को कहते हैं कि इसको माला में बदल दो। तो वो सुनार उसी अंगूठी का रूप बदलकर माला के रूप में बदल देता है। अब आप बताईये कि क्या इस अंगूठी का पुनर्जन्म हुआ माला के रूप में या कि सोने का पुनर्जन्म हुआ माला के रूप में और उसकी मृत्यु हुई अंगूठी के रूप में ? तो यहां स्वर्ण है तत्व जिसका कि पुर्नजन्म हो रहा है। और अंगूठी तथा माला हुई यहां व्यक्तित्व। तो अब आप सोचिये कि नामरूप किसका बदल रहा है? स्वर्ण का या अंगूठी का ? निश्चितरूप से स्वर्ण का नामरूप बदल रहा है। और व्यक्तित्व को आप नामरूप से भी संबोधित कर सकते हैं। तो इसका अर्थ हुआ कि स्वर्ण का पुनर्जन्म हो रहा है नाकि अंगूठी और माला का। तो तत्वों का लगातार पुनर्जन्म हो रहा है नाकि नामरूप का। हर बार नामरूप अलग ही पैदा होते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। आशा है कि आप समझ चुके होंगे। और अब जब पुनर्जन्म ही नहीं है तो पिछले जन्म का कर्मसिद्धांत का तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

आत्मा क्या है?

जैसाकि आप उपर समझ ही चुके हैं कि जिसे हम लोग शरीर कह रहे हैं उसे ही ये उपनिषद **आत्मा** के नाम से कह रहा है। अर्थात् ये पूरा शरीर आत्मा ही है। जिसके अंदर विभिन्न प्रकार के अंग और उपांग हैं। जैसे पांच ज्ञान इंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, मन, बुद्धि, चित्त, अहम् और इसके अलावा दिल, किडनी, हड्डीयां आदि। अब चूंकि इन सबमें अहम् यानिकि जिसको हम मैं कहकर संबोधित करते हैं, ये इस पूरी आत्मा का अध्यक्ष है। अर्थात् ये ही सभी प्रकार की ईच्छा करता है। ये ही केंद्र बिन्दु है इस पूरे शरीर का। तो इस कारण से इस अहम् को ही आत्मा नाम से भी कह दिया जाता है। नहीं तो तत्वतः तो आत्मा इस पूरे शरीर को ही कहते हैं। माने शरीर कहो या आत्मा कहो ये एक ही बात है। अब लेकिन पूरे शरीर की धुरी ये मैं या अहम् है इसलिए बोलने में इसे ही आत्मा कह दिया जाता है। उदाहरण के लिए जैसे सरकार तो पूरा एक सिस्टम होता है लेकिन कहने में लोग कह देते हैं कि मोदी सरकार या केजरीवाल सरकार। क्योंकि उस सरकार में मोदी या केजरीवाल मुख्य पद पर हैं। तो उनको भी सरकार नाम से बोल दिया जाता है। नहीं तो भाषा की दृष्टि सरकार का अर्थ एक आदमी से नहीं होता बल्कि उसके सारे अंग और उपांगों को मिलाकर कहा जाता है। उसी प्रकार पूरा शरीर ही आत्मा है भाषा की दृष्टि से। बस बोलने को इस अहम् को या मैं को आत्मा बोल दिया जाता है क्योंकि इस पूरे शरीर में ये अंग ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ये ही इस पूरे शरीर का केंद्रबिन्दु है। आप देखते भी होंगे कि व्यवहार में जैसे ही ये मैं नाम का अंग समाप्त हो जाता है या बिमार हो जाता है यानिकि पागल हो जाता है तो बाकि शरीर स्वस्थ होने पर भी वो किसी काम का नहीं रह जाता है। तो अब आप ठीक से समझ ही चुके होंगे कि आत्मा का भाषा के अनुसार वास्तविक अर्थ क्या है और बोलचाल की भाषा में इस मैं को ही क्यों आत्मा कहकर संबोधित कर दिया जाता है। और ये भी आप समझ चुके होंगे कि इस बोलचाल की भाषा के कारण ही कालांतर में शब्द का अर्थ विकृत हो जाता है। और इस विकृति के कारण लोग समझते हैं कि इस शरीर से अलग आत्मा का कोई अस्तित्व है। और उसे खोजने में लग जाते हैं। और पूरा जीवन प्रयास करने पर मिलता नहीं, ना ही उसका अनुभव होता है। अनुभव भी कैसे हो? अनुभव तो उसका होगा ना जिसका अस्तित्व हो? अब जैसे कोई आदमी ये सुनकर कि मोदी सरकार है। और किसी मोदी सरकार की खोज में निकल जाये तो उसे मोदी तो मिल जायेंगे लेकिन मोदी नाम की सरकार कहीं नहीं मिलेगी। क्योंकि सरकार तो होती है लेकिन मोदी सरकार तो वास्तव में होती नहीं। केवल कहने में लोग कह देते हैं मोदी

सरकार। वैसे ही लोग मैं को या अहम् को आत्मा कह देते है, लेकिन वास्तव में ये पूरा शरीर ही आत्मा है। मैं या अहम् उस आत्मा का या शरीर का एक मुख्य अंग है, वास्तव में केंद्रबिंदु है। जैसे मोदी, सरकार का मुख्य अंग है यानिकि प्रधानमंत्री है नाकि पूरी सरकार। तो आशा है कि आप आत्मा का वास्तविक अर्थ समझ चुके होंगे। तो ये शरीर ही आत्मा है।

आईये अब हम सुषुप्ति अवस्था में प्रवेश कैसे करें, इसको समझते हैं। स्वप्नावस्था में होशपूर्वक या जाग्रतिपूर्वक पहुंचने के पश्चात हमें बस इतना करना होता है कि जो स्वप्न वहां चल रहा है, उसमें कोई रस नहीं लेना है, उससे उदासीन हो जाना है। उसे समझने का या जानने प्रयास भी नहीं करना है। ऐसा करने के थोड़ी देर में ही वो स्वप्न समाप्त हो जायेगा। और वहां रह जायेंगे केवल और केवल आप। आप वहां अपने आप को आकाश के रूप में ही अनुभव करेंगे। वहां केवल आकाश होगा और वो आकाश आप ही हो, ऐसा आप अनुभव कर रहे होंगे। जैसे जाग्रत में हम ये अनुभव करते हैं कि ये शरीर ही मैं हूं। वहां आप पायेंगे कि बिना आपके प्रयास के वहां आपकी याददाश्त भी काम नहीं करती है। यदि आप कुछ याद करना चाहोगे तो ही याद आयेगा। नहीं तो बिना किसी याद के ही आप वहां आकाशरूप में बने रहेंगे। बस ये अपने आपको जानने का प्रारम्भ है। यहां से ही आत्मज्ञान प्रारम्भ होता है। ये ही समाधि स्थल है। इस समाधि स्थल में आप जिस भी विषय पर केंद्रित होंगे, केवल उससे संबंधित याद ही आपको आयेगी, जो भी आपके याद में उससे संबंधित सुचनाएं या अनुभव होंगे। और जो भी याद आपको आती रहेगी, उसे आप वहां जांचकर भी देख सकते हैं कि वो सत्य है याकि कुछ और। फिर उसको इस जाग्रतावस्था में भी जांचकर देख सकते हैं। यदि यहां पर भी वो सत्य सिद्ध होती है तो वो अंतिमरूप से सिद्ध हो गयी समझो। वो उस बारे में अंतिम ज्ञान ही होता है। अब उसमें कोई परिवर्तन सम्भव नहीं रहता। आप उस बारे में ज्ञान प्राप्त कर चुके होते हो। वो भी बिना किसी संदेह के। जैसे जब मैंने अपने आप से इस सुषुप्ति अवस्था में ये प्रश्न किया कि मैं इस अवस्था से जाग्रतावस्था में क्यों जा रहा हूं? तो उस समय मुझे मुझसे ही उत्तर मिला कि सुखी होने के लिए जा रहा हूं। अव इसपर मैंने जाग्रतावस्था में आकर भी काफी मंथन किया, स्वयं भी और दूसरों के साथ भी। तो पाया कि ये उत्तर पूरी तौर से सही था। और इस प्रकार से मुझे मेरे सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर प्राप्त हुआ, जिसको कि मैं बचपन से ही खोज रहा था। और बहुत प्रयास करने के बावजूद भी प्राप्त नहीं कर पा रहा था। प्रश्न था कि जीवन का उद्देश्य क्या है? इसके उत्तर के बाद तो फिर मैंने बहुत सारे प्रश्न करता गया स्वयं से ही और उनके सटीक उत्तर पाता गया। और इसके द्वारा ही मैं **सम्पूर्ण समाधान**

पुस्तक को लिख पाया। जिसमें कि सभी समस्याओं के मूल कारण को समझ पाया और लिख पाया, अपने आप को यानिकि चेतन तत्व को जान पाया, और समस्याओं के समाधान को जान पाया और उसको लिख पाया। तो ये है सुषुप्ति अवस्था और उसकी महिमा। अभी इसी सुषुप्ति अवस्था पर बहुत सारे शोध होने बाकि हैं, जिनपर मैं लगा हुआ हूं। जैसे जैसे मैं उन शोधों को करता जाउंगा, वैसे वैसे ही मैं आप सभी लोगों को बताता जाउंगा। और जो लोग भी इन शोधों को करने के जिज्ञासु हों या इच्छुक हों, उनको शिविर आदि से सहायता भी करता जाउंगा।

धारणा, ध्यान और समाधि क्या हैं?

ध्यान का सीधा सा अर्थ है कि अपने ध्येय पर अर्थात् अपने उद्देश्य पर अवधान रखना या केंद्रित रहना, एकाग्र होना, लक्ष्य को अपने होश में रखना आदि। उदाहरण के लिए जैसे मेरे जीवन का ये बहुत ही अहम प्रश्न था कि इस जीवन का उद्देश्य या लक्ष्य क्या है, तो मेरे जीवन का यही मुख्य ध्येय रहा या लक्ष्य रहा। मैं इस प्रश्न पर या इसी विषय पर मुख्यरूप से अपने जीवनभर केंद्रित रहा जबतक कि मैंने इसे जान नहीं लिया। इसे इस तरह से भी कह सकते हैं कि मैं अपने अबतक के पूरे जीवन में इस प्रश्न पर मुख्यरूप से ध्यान करता रहा या ध्यानस्थ रहा। और बीच में भी समय समय पर थोड़े थोड़े समय के लिए विभिन्न प्रकार के लक्ष्य या ध्येय जीवन में आते रहते हैं जिनमें हम स्थिति अनुसार अपने लक्ष्यों पर ध्यान रखते हैं जबतक कि वो पूरे नहीं हो जाते या हम उन्हें किसी कारणवश छोड़ नहीं देते। और जैसे ही हमारा लक्ष्य पूरा होता है तो इसे ही समाधिस्थ होना कहा जायेगा। समाधिस्थ का सीधा सा अर्थ होगा कि हमें समाधान हो गया अर्थात् जो चाहते थे उसकी पूर्ती हो गयी। यानिकि लक्ष्य की पूर्ती हो गयी और अब उस पर धारणा की, ध्यान की जरूरत ना रही। और इसी प्रकार धारणा को समझ सकते हैं। धारणा माने जिसकी हमें ईच्छा हुई है अर्थात् जिसकी हम पूर्ती करना चाहते हैं। या दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जिसे हम धारण करना चाहते हैं। क्योंकि जिसकी ईच्छा होगी, उसी को तो हम धारण करना चाहेंगे ना? तो सीधे सीधे हम समझ सकते हैं कि हमारे अंदर उत्पन्न ईच्छा को जब पूरा करने का निर्णय करते हैं तो इसे ही उस ईच्छा की धारणा कहेंगे। इसके बाद उस पर केंद्रित रहते हुए उसकी पूर्ति की दिशा में चलेंगे तो इसे ही ध्यान कहेंगे और जब उसकी पूर्ति हो जायेगी तो इसे ही उस विषय में समाधिस्थ होना कहेंगे। ये ही धारणा, ध्यान और समाधि है। इसे आप आंतरिक और वाह्य दोनों प्रकार के विषयों पर समझ सकते हैं। तो धारणा का अर्थ हो गया वह जिसको कि

हम धारण करना चाहते हैं या ग्रहण करना चाहते हैं, जिसकि हमें ईच्छा हो रही है। उसपर केंद्रित रहना ही ध्यान हो गया। और उसकी पूर्ति होना ही समाधि हो गया।

तुरियावस्था में प्रवेश

अमात्रश्चतुर्थो अव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः शिवो अद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद ।। 12 ।।

मात्रा रहित चौथा आत्मा ही है। वह अव्यवहार्य, प्रपंचोपशम, शिव और अद्वैत है। इस प्रकार ओंकार आत्मा ही है। जो उसे इस प्रकार जानता है, वह स्वतः अपने आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है।

ये आपकी वह अवस्था है जिसमें कि आप गहरी निद्रा में चले जाते हैं। जो जाग्रति हमारी जाग्रतावस्था में रहती है और उससे काफी कम स्वप्नावस्था में रहती है और नाममात्र की जाग्रति सुषुप्ति अवस्था में रहती है लेकिन इस तुरियावस्था में जाग्रति पूर्णतया समाप्त हो जाती है। और मुख्य तत्व अपनी अक्रियावस्था में स्थित हो जाता है यानिकि ये आकाश तत्व अक्रिय अवस्था में बस बना रहता है। अब इससे पीछे जाने की कोई संभावना नहीं होती। क्योंकि आकाश ही प्रथम तत्व है। क्योंकि कुछ भी अस्तित्ववान होने के लिए सबसे पहले स्थान यानिकि आकाश तो चाहिए। तो सबसे पहले आकाश ही हो सकता है और कुछ होने की कोई संभावना नहीं है। और ये आकाश सक्रिय तथा अक्रिय दोनों गुणों को लिए हुए है। अर्थात् ये आकाश चेतन और जड़ दोनों गुणों वाला है। अक्रिय होने के बाद फिर जब इसका विश्राम पूरा हो जाता है तो ये फिर से सक्रिय होने लगता है और ब्राहम्मांड होने की दिशा में सक्रिय होने लगता है। एक से अनेक होने की, सुखी होने के उद्देश्य तहत् वो गति करने लगता है।

इसमें प्रवेश का सूत्र ये ही है कि जो मनुष्य ये जान पाता है कि ये ओंकार आत्मा ही है। वह मनुष्य अपने आत्मा में प्रवेश कर जाता है। अर्थात् विश्राम की अवस्था में ईच्छानुसार प्रवेश कर लेता है। और इसका तरीका या उपाय आसान सा ही है। सुषुप्ति अवस्था में आप जो **मैं** के रूप में अनुभव करते हो, यदि उसी अनुभव में थोड़ी देर बने रहते हो और साथ में विश्राम की ईच्छा है तो आप थोड़ी देर में ही अपने **मैं** के अनुभव में लीन हो जाते हो यानिकि पूरे तौर से गहन निद्रा में चले जाते हो। और विश्राम पूरा होने के बाद फिर से जाग्रति को प्राप्त होते हो। और यदि फिर से जाग्रति में आने की ईच्छा नहीं हो तो इस स्थिति में जाने के बाद फिर जागना नहीं होगा। अर्थात् गहन निद्रा में जाने के बाद ये शरीर भी शान्त हो जायेगा, मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इसकी आंतरिक प्रक्रियाएं रूक जायेंगी। ईच्छा नहीं तो जीवन नहीं।

ईच्छा होने से ही जीवन होता है। ईच्छा से ही जीवन का प्रारम्भ होता है। ईच्छाओं की समाप्ति के साथ ही जीवन की गति रूक जाती है। वैसे भी आप अपने अंदर देख और समझ सकते हैं कि यदि आपके अंदर ये ईच्छा करने की प्रक्रिया समाप्त हो जाये तो जीवन का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। और जब जीवन का ही कोई अर्थ नहीं रह जायेगा तो इतने विराट संसार का आयोजन बिना अर्थ के हो जायेगा, बेअर्थ हो जायेगा।

तो ये जीवन का या आत्मा का पूरा चक्र है। सक्रिय से निष्क्रिय और निष्क्रिय से सक्रिय। इन्ही दोनों के बीच में सारी गति होती रहती है। और इस गति का कारण है केवल और केवल सुखी होने की ईच्छा और सुख पूर्ति के बाद अगति हो जाना अर्थात् विश्राम की अवस्था में चले जाना। इस चक्र के बाहर कुछ भी अस्तित्ववान नहीं है। अर्थात् इसके परे कुछ नहीं है। जो भी कुछ है वो सब ये ही है।

सत्य

उपर आप सारा पढ़कर समझ ही चुके होंगे कि सत्य ये है कि हम सब एक ही मूल तत्व का विस्तार हैं, एक ही अनेक हुआ है। अनेक दिखाई पड़ने पर भी हम सब एक बहुत बड़ी माला के मनके के जैसे हैं। साधारणतया देखने पर ऐसा लगता है कि मैं अलग हूँ और दूसरे भी अलग–अलग हैं। लेकिन यदि ज्ञान की आंख से देखा जाये तो पता चलेगा कि ये आधा सत्य है। पूरा सत्य यह है कि हम अनेक होते हुए भी एक ही हैं। व्यक्तित्व के दृष्टिकौण से अनेकता दिखाई देती है और मूल का ज्ञान होने पर समझ में आता है कि सब एक ही है। हम सब उस वृक्ष की तरह हैं जो मूल में एक है और शाखाओं पर अनेक। हम सबका उद्देश्य भी एक ही है, वो है अपने इच्छित सुखों की निरंतर प्राप्ति करना। व्यक्तिगत सुख सबके भिन्न भिन्न होते हैं। सबकी पसंद नापसंद भी भिन्न भिन्न होती है। सबकी प्रवृत्तियां भिन्न होती हैं। एक ही वस्तु से किसी को सुख और किसी को दुख हो सकता है, एक ही वस्तु से किसी एक को भी भिन्न भिन्न समय में कभी सुख और कभी दुख हो सकता है। इस परिवर्तनशील संसार में सभी कुछ परिवर्तनशील रहता है, ये भी सत्य ही है। और प्रकृति के और भी जितने ज्ञान विज्ञान है और जो बाद में भी खोजे जायेंगे वो सब सत्य की कोटि में ही आयेंगे। इन सत्यों की कभी भी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। नहीं तो दुखद परिणाम ही होगा जीवन का, और फिर जन्म मरण से छुटकारा ही मांगते फिरेंगे, और वो भी मिलेगा नहीं क्योंकि ऐसा कुछ होता नहीं है। क्योंकि समष्टि से बाहर होने की कोई संभावना नहीं हैं। समष्टि अपने आप में मूल है। अब उसके पीछे नहीं जा सकते, उसके बाहर नहीं जा सकते। जितना भी अस्तित्व है वह सब उसके ही अंदर है। तो माने जो है वह सत्य है। मूल में एक है यह भी सत्य है और

एक ही अनेक होकर अनेकता में व्यवहरित है ये भी सत्य ही है। जीवन का उद्देश्य निरंतर सुख प्राप्ति है, ये भी सत्य ही है।

प्रेम

एक दूसरे से सुख प्राप्त करने या प्राप्त करने की आशा में आसक्ति पैदा होती है। अर्थात् एक दूसरे के बीच सम्बंध होता है। और संबंध होता है इस बात पर निर्भर कि वो आपस में एक दूसरे के लिए कितने उपयोगी हैं। जिस प्रकार की और जितनी उपयोगिता होगी, उसी प्रकार का और उतना ही संबंध उनके बीच होगा। इस संबंध को ही आकर्षण कहते हैं। जब हमें हमारे बीच एक दूसरे की उपयोगिता का ज्ञान होता है और ये पता चलता है कि मेरे सुख दूसरे के योगदान बिना असंभव हैं तो उसे दूसरों में आकर्षण हो जाता है। इसी आकर्षण को प्रेम कहते हैं। जिस भी तल पर उसको ये ज्ञान होगा, उसी स्तर का प्रेम उसके अंदर उत्पन्न हो जायेगा। व्यक्तिगत तल पर तो हम अकेले होते हैं तो वहां तो कोई दूसरा होता नहीं संबंध बनाने के लिए। लेकिन पारिवारिक तल पर एक उदाहरण लेते हैं। जब पति को पत्नि से सुख मिलने लगते हैं तो उसे उससे प्रेम होने लगता है। उसे पता चलता है कि बिना पत्नि के मैं वो सुख प्राप्त कर ही नहीं सकता जोकि पत्नि से ही मिलता है। इसी प्रकार सामाजिक तल पर समझ सकते हैं। हालांकि सामाजिक तल पर प्रेम को अनुभव करना थोड़ा कठिन होता है क्योंकि ये समझने में कठिनाई होती है कि मेरे बहुत सारे सुखों में समाज का बहुत बड़ा योगदान होता है। लेकिन जिसको भी समझ आ जाता है तो उसे अनुभव भी होने लगता है। इसी लिए कहते हैं कि वास्तविक ज्ञान से प्रेम उत्पन्न होने लगता है। और जब प्रेम उत्पन्न होगा हमारे अंदर तो अनुभव भी तभी होगा, उससे पहले तो होगा नहीं। जैसे बाकि अनुभव भी तभी होते हैं जबकि उनसे संबंधित घटना हमारे अंदर घटित होती है। अर्थात दूसरों के बिना योगदान के हम थोड़े से सुखों को ही पा सकते हैं वो भी बहुत कठिनाई से। तो इस पारस्परिक निर्भरता के ज्ञान से हमारे अंदर दूसरों के लिए प्रेम का जन्म हो जाता है। उसे पता चलता है कि दूसरे के बिना मैं सम्पूर्ण रूप से सुखी नहीं हो सकता। तब उसे दूसरों का महत्व समझ आ जाता है जिसके कारण उसे औरों से प्रेम हो जाता है। जैसे वृक्ष के मूल और शाखाओं के बीच जो सम्बंध है वो ही प्रेम है। पारिवारिक सुखों की प्राप्ति के लिए ये प्रेम ही आधार है। परिवार का अर्थ है– दो या दो से अधिक मनुष्य एक साथ लम्बे समय रहना चाहते हैं। पारिवारिक सुख का उदय लम्बे समय साथ रहने से ही होता है। इसी के लिए परिवार नाम की संस्था का निर्माण किया जाता है। साधारण रूप में समझना हो प्रेम को तो वो ये है कि जब हमें किसी का सानिध्य पाकर सुख प्राप्त होता हो और उसके साथ लगातार बने रहने की इच्छा

होती हो ताकि उस सुख को निरंतर जबतक की उसे इच्छा हो, वह पाता रह सके, तो इस आकर्षण को ही प्रेम कहते हैं। ये प्रेम की सामान्य परिभाषा है या इसे आप केवल आसक्ति कह सकते हैं। और आगे जाकर ये सामान्य प्रेम या आसक्ति ही और गहरी होने लगती है। तब केवल अपना सुख ही घ्येय नहीं रह जाता बल्कि परिवार के दूसरे सदस्यों का सुख भी घ्येय बनने लगता है। दूसरे का सुख ही अपना सुख लगने लगता है। ये प्रेम की पराकाष्ठा है। सम्बंधों में इससे अधिक कुछ नहीं होता। ये ही प्रेम या पारिवारिक प्रेम कहलाता है। इसके बाद और अधिक समझ होने पर प्रेम का स्तर सामाजिक होने लगता है और फिर सामष्टिक होने लगता है। व्यक्तिगत प्रेम, पारिवारिक प्रेम, सामाजिक प्रेम और सामष्टिक प्रेम। ये चार ही तल हैं प्रेम के। पहला स्वयं से ही प्रेम होता है। दूसरा परिवार से प्रेम होता है। तीसरा समाज से प्रेम होता है। और चौथा समष्टि से प्रेम होता है। जिस स्तर का ज्ञान होगा, उसी स्तर का प्रेम होगा और जिस स्तर का प्रेम होगा, उसी स्तर का कर्म होगा। जिस स्तर का कर्म होगा, उसी स्तर का परिणाम होगा। इससे ही किसी का व्यक्तित्व परिभाषित होगा।

न्याय

मनुष्य का अर्थ है कि जिसका मन सक्रिय अवस्था को प्राप्त है अर्थात जो चिंतन मनन करने में समर्थ हो जाता है। जो अर्थों को सही से समझ पाता है। मन के द्वारा अर्थों को समझकर हम इस न्याय तत्व को भी समझ सकते हैं। न्याय का अर्थ है– सभी को वो सब मिल जाये जिससे कि वो सुखी होता हो। सम्पूर्णरूप से सुखी होना ही जीवन का उद्देश्य है। और जिस भी व्यवस्था से सभी को उनके अभीष्ट सुख मिल जाये, उसके उद्देश्य पूर्ण हो जायें, तो उसे ही न्यायशील व्यवस्था कहेंगे। उसे ही कहेंगे कि समाज में न्याय स्थापित है। यहां जो भी प्राकृतिक संसाधन हैं उन सभी पर तो सबका समान अधिकार है। अब सबको ये समान अधिकार कैसे प्राप्त हो सकें उसके लिए अधिकारों और कर्तव्यों का निर्धारण करना होता है जिसका आधार न्याय ही माना जाना चाहिए। जब किसी को ये बात समझ आ जाती है कि अपने दम पर वो संसार के सारे सुख प्राप्त नहीं कर सकता या परिवार के दम पर भी सारे सुख प्राप्त नहीं कर सकता तो उसे सभी लोगों के योगदान की आवश्यकता अनुभव होने लगती है और वो चाहने लगता है कि सभी साथ रहें, तो समझों कि वो अब सामाजिक हो गया है, अर्थात वो अब समाज के अर्थ को समझ गया है। ये सारा ज्ञान उसे शिक्षा के माध्यम से दे देना चाहिए ताकि वो एक सभ्यता को समझने वाला आदमी बन सके, सभ्यता में आने से पहले अर्थात् 25 वर्ष के अंतर्गत ही।

यदि कोई नीति नियमों को जानता ही नहीं होगा तो भला उससे उन्हें पालन करने की आशा कैसे की जा सकती है? ये जो हम सरकार की बात कर रहे हैं। वैसे सरकार की आवश्यकता विशेष रूप से समाज के स्तर से ही शुरू होती है। इसीलिए सरकार का कार्य इसी न्याय को स्थापित करना और उसे संचालित करना होना चाहिए। तभी सभी कर्मों और अधिकारों का न्यायपूर्वक सही वितरण हो पाता है। यदि हम इस प्रकार की न्याय व्यवस्था को नहीं लाते हैं तो हमें दुखी होने के लिए तैयार रहना चाहिए। और न्याय की केवल बात करने से या किसी संविधान में लिख देने भर से वो धरातल पर नहीं उतर जाता। उसके लिए ऐसे विधान बनाने होते हैं जिनसे न्याय धरातल पर उतर पाये और सभी का जीवन सुखी हो पाये। जो मनुष्य जितने ज्ञान की रूचि रखता है उसे उतना ज्ञान मिल जाये, जितने कर्म करने की रूचि रखता है उतना कर्म मिल जाये, जितने भोग करने में रूचि रखता है उतना भोग मिल जाये, और जितने विश्राम की रूचि हो उतना विश्राम मिल जाये आदि। बस यही न्याय है। और यदि ये सबको हो पाता है तो यही समता है। यदि प्राथमिक स्तर पर ही न्याय कर दिया जाये अर्थात सरकार का सबकुछ न्याय पर ही आधारित हो तो न्यायालयों आदि की आवश्यकता न्यून हो जाती है। जिस व्यवस्था में न्यायालयों की जितनी अधिक आवश्यकता होती है, तो समझ लेना चाहिए कि वो व्यवस्था उतनी ही अधिक अन्यायपूर्ण होगी। ये कसौटी है किसी भी व्यवस्था को जांचने के लिए। अगर सबको सभी कुछ प्राप्त हो, तो कोई क्यों किसी से छीना झपटी आदि करेगा? क्योंकि सारे अपराध कुल मिलाकर सुखों की प्राप्ति के लिए ही होते हैं। तो किसी न्यायालय की आवश्यकता ही कहां पड़ेगी? सभी आराम से सुख भरा जीवन शांति से जी रहे होंगे। बस न्याय का यही अर्थ है। ये ही न्याय है।

पुण्य

जब हम सभी अपना जीवन जीते हैं। तो हमारे द्वारा अनजाने बहुत सारे ऐसे कर्म होने की संभावना रहती है जिनसे कि इस सृष्टि के विभिन्न चक्रों का संतुलन विगड़ने लगता है। तो एक तो ये कम से कम बिगड़े ऐसे उपाय पहले ही हों। दूसरा फिर भी यदि बिगड़ जाता है तो उसके उपाय तुरंत प्राप्त ज्ञान के आधार से किये जाने चाहिए। ऐसे उपायों को ही पुण्य कर्म कहा जाता है। जोकि अधिकतम तो सरकारी स्तर से किये जाते हैं। कभी कभार सभी के स्तर से करने की आवश्यकता भी हो सकती है। हां प्राप्त ज्ञान के आधार से ऐसा प्रयास सभी की ओर से होना चाहिए कि प्रकृति का संतुलन बिगड़े ही ना। तो समष्टि का आधार पुण्य ही होना चाहिए। बस यही पुण्य है। इसका लेना देना अधिकतम सरकार को ही होता है। क्योंकि वहीं पर

ही अधिकतम ज्ञान और कर्म की संभावना रहती है। व्यक्तिगत या पारिवारिक स्तर पर ज्ञान की या उसके स्तर के कर्म की संभावना न्यून ही होती है सरकार की अपेक्षा।

अच्छाई और बुराई क्या होती है?

पहले समझने का प्रयास करते हैं और फिर अच्छाई और बुराई की परिभाषा करेंगे। ये तो हम सभी अपने अनुभव से जानते ही हैं कि जब जब कुछ भी हमें सुखद प्रतीत होता है तो उसे हम अपनी ओर से अच्छा जानते हैं। कोई भी ज्ञान, कर्म, भोग, व्यवहार, स्थिति परस्थिति आदि यदि हमें सुखद अनुभव देती है तो हमें लगता है कि ये सब अच्छा है हमारे लिए। और यदि कोई भी ज्ञान, कर्म, भोग, व्यवहार, स्थिति परस्थिति आदि यदि हमें दुखद अनुभव देती है तो हमें लगता है कि ये सब हमारे लिए बुरा है। माने अच्छे का सुख से संबंध है और बुरे का दुख से संबंध है।

तो इस आधार पर अब हम परिभाषा कर सकते हैं कि जो भी ज्ञान, कर्म, भोग, व्यवहार, स्थिति परस्थिति आदि सबको सुख देती हैं और किसी के दुख का कारण नहीं बनती हैं तो इसे अच्छाई कहेंगे। और इसके विपरीत जो भी ज्ञान, कर्म, भोग, व्यवहार, स्थिति परस्थिति आदि सबको दुख देती हैं और किसी के सुख का कारण नहीं बनती हैं तो इसे बुराई कहेंगे। और यदि जो भी ज्ञान, कर्म, भोग, व्यवहार, स्थिति परस्थिति आदि किसी को सुख देती हैं और किसी को दुख का कारण बनती हैं तो इसे मिश्रित कहेंगे। अर्थात् कुछ सीमा तक अच्छाई है और कुछ सीमा तक बुराई है। या कुछ मनुष्यों के लिए अच्छाई है और कुछ मनुष्यों के लिए बुराई है। माने उसे पूर्णतयः अच्छाई है या बुराई है, ऐसा नहीं कह सकेंगे।

अच्छाई और बुराई का मूल कारण

अबतक हम लोग सुनते आये हैं कि अच्छाई और बुराई का मूल कारण जीव के यानिकि मनुष्य के अंदर है। आओ इस पर चिंतन करके समझते हैं कि क्या ये सत्य है। और इस प्रश्न को सुलझाना बहुत जरूरी है क्योंकि इस प्रश्न के उत्तर से ही ये स्पष्ट होगा कि हम सुधार संशोधन कहां पर करें। यदि उत्तर ये आता है कि अच्छाई और बुराई हमारे अंदर से आती है तब तो हमें अपने अंदर सुधार करना होगा। अर्थात् अपने अंदर से बुराई को मिटाना होगा और अच्छाई को बढ़ाना होगा। परंतु यदि

उत्तर ये आया कि अच्छाई और बुराई का कारण मनुष्य के अंदर नहीं बल्कि बाहर है तब तो हमें बाहर में सुधार संशोधन करने होंगे नाकि मनुष्य के अंदर में। इस प्रश्न का उत्तर इसलिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसके सही उत्तर पर ही मनुष्य का पूर्णरूप से सुखी होने का आधार बनेगा। माने मनुष्य का पूरा भविष्य इस प्रश्न के सही उत्तर पर टिका है, यदि इसका उत्तर हम सही से पा सके तो तब तो मनुष्य पूर्ण सुखी हो सकेगा अन्यथा तो वर्तमान स्थिति ही जारी रहेगी। और चूकिं अभी तक मनुष्य पूर्णरूप से सुखी नहीं हुआ है तो हम इस निर्णय पर पहुंच सकते हैं कि अभी तक इस प्रश्न का सही उत्तर हम पा नहीं सके हैं। और ये बात हम सब जानते ही हैं कि सभी मनुष्य पूर्णरूप से सुखी होना चाहते हैं और कुछ नहीं। इसमें यदि किसी को कोई संदेह है तो कृपया बतायें।

और आजतक सारे धर्मग्रंथ, दर्शनशास्त्र ये ही बता रहे हैं कि ये अच्छाई और बुराई मनुष्य के अंदर से आती है। अर्थात् अच्छाई और बुराई का मूल कारण मनुष्य के अंदर है। और इसीलिए मनुष्य को सुधारने की चेष्टा ही अभी तक होती आयी है। उस पर ही सारी नैतिकता को थोपने का प्रयास होता आया है। सारी व्यवस्थाएं भी इसी आधार पर बनाई जाती रहीं हैं। मनुष्य को ही इनके लिए उत्तरदायी ठहराया जाता रहा है और इसीलिए अच्छाई के लिए पुरस्कार और बुराई के लिए दंड का प्रावधान रखा जाता रहा है संविधानों में। और ये कुछ मनुष्य बाकि सब लोगों के बारे में निर्णय लेते चले आये हैं कि ये कुछ मनुष्य तो अच्छे हैं और बाकि अधिकांश मनुष्य बुरे हैं। चिंतन करने वाली बात ये है कि सभी मनुष्य इस प्रकृति से पैदा हुए हैं तो फिर भला कुछ मनुष्य अच्छे और अधिकांश मनुष्य बुरे कैसे हो सकते हैं? या तो सभी अच्छे होंगे या तो सभी बुरे होंगे। सभी अच्छे होंगे तो फिर उन्हें सुधारने की क्या जरूरत है? और यदि सभी बुरे होंगे तो फिर कुछ मनुष्य कैसे बाकि के बारे में निर्णय ले सकते हैं कि केवल उनको सुधारना है, कुछ बुरे मनुष्य कैसे बाकि बुरे मनुष्यों को सुधार सकते हैं? या कौनसा बुरा मनुष्य ये तय करेगा कि कौन अच्छा है और कौन बुरा? और किस आधार से तय करेगा? बुरे होने की स्तिथि में तो बात ही समाप्त हो जाती है कुछ भी संशोधन आदि करने की। क्योंकि बुरा मनुष्य भला कैसे कोई सही संशोधन कर सकता है? ये सम्भव कैसे होगा?

तो मनुष्य को तो हमें मूल में लेना होगा यहां। तो मनुष्य जैसा है, हमें उसके अनुसार ही अपनी सारी व्यवस्था का निर्माण करना होगा। नाकि व्यवस्था के अनुसार मनुष्य को होने के लिए बाध्य करना। उदाहरण के लिए हम कार बनाते हैं। तो क्या कार को मनुष्य की जरूरत और आराम के अनुसार बनाते हैं याकि सीधे बिना सोचे समझे कार बना देते हैं और फिर मनुष्य को बोलते हैं कि भाई अब आप कार के हिसाब से

अपने चरित्र में बदलाव लाओं? सीधी सी बात है, कि कार को ही मनुष्य के अनुसार बनाया जाता है नाकि मनुष्य को कार के अनुसार बनने को बाध्य किया जाता है। क्योंकि मनुष्य और कार में मनुष्य मूल है और कार उसके लिए है। यदि मनुष्य को कार प्रयोग करते समय कोई समस्या होती है तो कार में संशोधन किये जाते हैं नकि मनुष्य में। इसीप्रकार व्यवस्था भी मनुष्य के अनुसार बनानी चाहिए नकि व्यवस्था के अनुसार मनुष्य को बाध्य करना चाहिए जीवन जीने को। यदि इतिहास में देखें तो दुर्भाग्य से आजतक ये ही होता आया है, मनुष्य को सही से जाने बिना ही व्यवस्थाओं का निर्माण किया गया है बार बार। इसीलिए प्रत्येक की गई व्यवस्था में लगातार संशोधन होते रहते हैं। और ये तबतक होते रहेंगे जबतक कि व्यवस्था पूर्णरूप से मनुष्य के अनुसार नहीं हो जाती। जिसदिन व्यवस्था मनुष्य के अनुरूप निर्मित होगी फिर उसमें कभी भी कोई संशोधन करने की जरूरत नहीं रहेगी। वो अंतिम संविधान या धर्म होगा मनुष्य के जीवन में।

तो उपर के चिंतन से हम समझ गये होंगे कि मनुष्य मूल है और मूलतः वो कुछ बुरा नहीं करता जबतक कि उसे सहज ही अपने अनुसार जीवन जीने को मिलता रहता है। जब भी उसे अपने स्वभाविक जीवन से अलग कुछ और प्रकार का जीवन जीने को बाध्य होना पड़ता है तो ही वो बुरी अभिव्यक्ति देने लगता है। क्योंकि इसमें वो लगातार दुखों को प्राप्त करता है जोकि वो नहीं चाहता। और जब सभी मनुष्य बुरी अभिव्यक्ति देने लगते हैं तब एक के बाद एक बुरी ग्रंथियों वाला जीवन शुरू होता है। और इस बुरी ग्रंथियों वाले जीवन को जीते हुए जो भी थोड़े से लोग शक्तिशाली होते हैं वो अपने जीवन को अधिक सुखी बनाने की ईच्छा से बाकि को अपने अनुसार जीने को बाध्य करते हैं और बाध्यकारी विधान या धर्म या नितियां बनाने लगते हैं जिससे शक्तिशाली लोग ही अधिकतम सुखों को प्राप्त कर पाते हैं वो भी जैसे तैसे भयभीत वातावरण में। वो कुछ सीमा तक सुखी तो होते हैं लेकिन विभिन्न प्रकार के भयों के साथ। और उनके द्वारा अधिकतम का शोषण होता रहता है। जैसा कि आजतक होता आया है। हम हमारे इतिहास में ये सब परिणाम जान सकते हैं। इन्ही बाध्यकारी विधानों को ही आजतक हम लोग विभिन्न धर्मों के नाम से या विभिन्न देशों के संविधान के नाम से जानते हैं। इनका नाम तो धर्म या संविधान होता है लेकिन यदि इनका हम अपने जीवन में परिणाम देखें तो ये अधर्म या असंविधान ही सिद्ध होते हैं। धर्म भी विधानों का एक संग्रह ही होता है। तो चाहे आप धर्म कहो या विधान कहो, नीतियां कहो या संविधान कहो, एक ही बात है। ये सब व्यवहारिकरूप से पर्यायवाची ही सिद्ध होंगे। सारे धर्म भी, क्या करो और क्या ना करो, ये ही निर्देश करते रहते

हैं। और संविधान भी, क्या करो और क्या ना करो से ही भरा होता है। तो धर्म और संविधान यहां पर्यायवाची ही हैं। इससे अलग कुछ नहीं।

तो अब हम ये निर्णय ले सकते हैं कि सभी अच्छाईयों या बुराईयों का मूल कारण मनुष्य में नहीं बल्कि उसके द्वारा बनाये गये धर्म या संविधान में है। इसीलिए संशोधन भी इनका ही होना चाहिए।

सारांश

इस संसार में जिसको कि हम लोग **मैं** कहते हैं या अंग्रेजी में **आई** कहते हैं या संस्कृत में **अहम्** कहते हैं, ये ही इस पूरे संसार का या शरीर का केंद्र है। सबकुछ इसी **मैं** के लिए है। ये ही अध्यक्ष है सबकुछ का। और इसके जीवन का उद्देश्य है केवल और केवल सदा सुखी रहना। ये सदा कोई ना कोई ईच्छा करता रहता है। और सुखी होने के लिए इसकी सभी ईच्छाओं की निरंतर पूर्ति होना जरूरी है। ईच्छा की पूर्ति होना ही सुखी होना है और ईच्छा की पूर्ति ना होना ही दुखी होना है। ईच्छा के बाद ये उसकी पूर्ति के लिए अपनी क्षमतानुसार और रूचि अनुसार प्रयास में लगा रहता है। ईच्छा की पूर्ति में सुख और अनापूर्ति में दुख का अनुभव करता रहता है। ये सुख में बने रहने और दुख से दूर रहना चाहता है सदा। अब चूंकि जीवित शरीरों के रूप में ये **मैं** अनेक हैं, बहुत सारे हैं तो सारे **मैं** सदा ही सुखी रहना चाहते हैं। और मूलरूप से प्रत्येक **मैं** सबसे पहले अपने आप को सुखी करना चाहता है। इसके कारण बहुत सारे **मैं** के बीच सभी के लिए एक ऐसी व्यवस्था की जरूरत है जोकि दो बातों का ध्यान रख सके। पहली, सबको सुखी रख सके और दूसरी, सभी के कर्मों को ऐसे व्यवस्थित कर सके जिसके कि एक **मैं** का किया हुआ दूसरे **मैं** के लिए दुख पैदा ना कर सके। यदि ऐसी व्यवस्था हो सके तब तो ये सभी एकसाथ सुखी रह सकते हैं। अन्यथा सही व्यवस्था के अभाव में ये बहुत सारे **मैं** अपने लिए अलग अलग सुखी होने का प्रयास करते हैं जिसके कारण अक्सर ही एक **मैं** का प्रयास दूसरे **मैं** के लिए दुख का कारण बन जाता है। जिससे इन बहुत सारे **मैं** के अंदर एक दूसरे के प्रति भय, अविश्वास, शत्रुता आदि नकारात्मकता पैदा होती रहती है जोकि बहुत प्रकार के दुखों को निरंतर पैदा करती रहती है। और जो भी इनके सुख में सहयोगी बनता है, उसके साथ निकटता, प्रेम, विश्वास, मैत्री आदि सकारात्मकता पैदा होती रहती है जोकि बहुत प्रकार के सुखों को निरंतर पैदा करती रहती है। इस सबसे समझ में आता है कि यदि सभी सुखी रहें तो इनमें मैत्री भाव रहता है जिससे ये एक दूसरे के सहयोगी बने रहते हैं। और यदि दुखी रहते हैं तो इनमें शत्रु भाव रहता है और ये एक दूसरे के विरोधी बने रहते हैं। तो स्पष्ट है कि हमारे सुखों और दुखों का मूल कारण हमारे अंदर नहीं बल्कि बाहर की व्यवस्था में है। जैसी व्यवस्था होगी वैसी ही हमारे बाहर और अंदर हमारी अवस्था पैदा हो जायेगी। अतः परिणाम में होने वाले सुखों और दुखों के आधार से किसी भी व्यवस्था की जांच हो सकती है कि वो व्यवस्था हमारे लिए कितनी सही और कितनी गलत है।

यदि इस संसार में ऐसी व्यवस्था हो सके जिससे कि इस **मैं** का उददेश्य पूरा होता रह सके तो संसार में कोई दुख पैदा ही नहीं होगा। और फिर उसका निवारण करने के लिए हमें अलग से अपना समय, संसाधन आदि को खर्च करने की जरूरत नहीं रहेगी, जोकि अपने आप में भी एक प्रकार का दुख ही है। और फिर भी उसका पूर्णतः निवारण हो नहीं पाता और सदैव ही अपने वर्तमन और भविष्य के प्रति भय लगा ही रहता है। इसीलिए **सम्पूर्ण समाधान** ही एकमात्र उपाय है सभी को सदा के लिए सुखी रहने का, जोकि सभी के जीवन का लक्ष्य ह

सम्पूर्ण जीवन का दर्शन आप इस पुस्तक को पढ़कर आसान भाषा में समझ जायेंगे। आत्मज्ञान की इससे सरल पुस्तक को खोज पाना कदाचित ही सम्भव हो।

इस संसार में जिसको कि हम लोग 'मैं' कहते हैं या अंग्रेजी में 'आई' कहते हैं या संस्कृत में 'अहम्' कहते हैं। ये ही इस पूरे संसार का या शरीर का केंद्र है। सबकुछ इसी 'मैं' के लिए है। ये ही अध्यक्ष है सबकुछ का। और इसके जीवन का उद्देश्य है केवल और केवल सदा सुखी रहना। ये सदा कोई ना कोई ईच्छा करता रहता है। और सुखी होने के लिए इसकी सभी ईच्छाओं की निरंतर पूर्ति होना जरूरी है। ईच्छा की पूर्ति होना ही सुखी होना है और ईच्छा की पूर्ति ना होना ही दुखी होना है।

ईच्छा के बाद ये उसकी पूर्ति के लिए अपनी क्षमतानुसार और रूचि अनुसार प्रयास में लगा रहता है।